गुरु भक्ति योग

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ।।

मुनिवर सयन कीन्हीं तब जाई । लगे चरण चापन दोउ भाई ।।

(गुरु विश्वामित्र की सेवा में श्रीराम और लक्ष्मण ।)

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

गुरू भक्ति योग
(Guru Bhakti Yog)

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सम्पादक

श्री स्वामी सच्चिदानंद

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरूसंतोषमात्रतः॥

'हे देवी! कल्पपर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ... ये सब गुरूदेव के संतोष मात्र से सफल हो जाते हैं।'

(भगवान शंकर)

अमानमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः।
असत्वरोऽर्थ जिज्ञासुः अनसूयुः अमोघवाक्॥

'सत्शिष्य मान और मत्सर से रहित, अपने कार्य में दक्ष, ममता रहित, गुरू में दृढ़ प्रीतिवाला, निश्चलचित्त, परमार्थ का जिज्ञासु, ईर्ष्या से रहित और सत्यवादी होता है।'

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

निवेदन

गुरू की आवश्यकता, गुरू के प्रति शिष्य की भक्ति कैसी होनी चाहिए एवं गुरू के मार्गदर्शन के द्वारा साधक शिष्य किस प्रकार आत्म–साक्षात्कार कर सकता है, इस विषय में पूज्य श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने अपनी कई पुस्तकों में लिखा है। श्री गुरूदेव के अग्रगण्य शिष्य एवं उनके निजी रहस्यमंत्री श्री स्वामी सच्चिदानंदजी ने सोचा कि स्वामी जी महाराज की पुस्तकों में से गुरू एवं गुरूभक्ति के विषय में जो जो लिखा गया है वह सब संकलित करके अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना अत्यंत आवश्यक है। अतः उन्होंने यह 'गुरूभक्तियोग' पुस्तक का सम्पादन किया।

आध्यात्मिक मार्ग में विचरने वाले साधकों के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है, इतना ही नहीं, एक आशीर्वाद के समान है।

सदगुरूदेव के कृपा–प्रसादरूप यह पुस्तक आपको अमरत्व, परम सुख और शान्ति प्रदान करे यही अभ्यर्थना......

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आमुख

स्वामी शिवानन्द

कर्म और कर्त्ता, पदार्थ और व्यक्ति के सम्बन्ध से ज्ञान होता है। वह एक प्रक्रिया है, चेतना नहीं है। बाह्य पदार्थ और आन्तरिक स्थिति की प्रतिक्रिया के द्वारा ही सब प्रक्रिया प्रकट होती है। मनुष्य में ज्ञान का उदभव यह ऐसी ही प्रतिक्रिया के द्वारा घटित एक रहस्यमय प्रक्रिया है। मूलतः ज्ञान सार्वत्रिक है और उसके लिए कोई प्रक्रिया आवश्यक नहीं है। परन्तु ज्ञान का उदय माने भावातीत चेतना नहीं अपितु सम्बन्धित व्यक्ति में ज्ञान का उदय है। सर्वोच्च ज्ञान को स्वरूपज्ञान–. अपने सत्य अस्तित्व के बोध विषयक ज्ञान कहा जाता है। जीव में इस स्वरूपज्ञान का उदय मन की वृत्तियों के द्वारा अभिव्यक्ति की सापेक्ष प्रक्रिया से होता है। इस प्रकार उदय की प्रक्रिया के दौरान ज्ञान वृत्तिज्ञान के रूप में होता और वृत्तिज्ञान निश्चित रूप से चेतना की देश एवं काल से बद्ध अवस्था है।

मानसशास्त्र जिसे ज्ञान कहता है वह वृत्तिज्ञान है। उसकी प्रबलता, व्यापकता और गहनता अलग–अलग हो सकती है। वृत्तिज्ञान बाह्य कर्म और कर्त्ता, पदार्थ और व्यक्ति के सम्बन्ध के सिवाय उत्पन्न नहीं हो सकता। इस विश्व में कोई भी घटना दो घटना या स्थितियों के संयोग से ही घटित हो सकती है और तभी वृत्तिज्ञान उत्पन्न हो सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान के क्रमशः आविष्कार के लिए आध्यात्मिक मार्ग का साधक कर्त्ता या व्यक्ति के रूप में माना जा सकता है। अब दूसरी वस्तु या व्यक्ति कर्म के रूप में आवश्यक है।

जब ऐच्छिक अनुशासन और एकाग्रता के द्वारा अपने मन की निर्मलता बढ़ती है तब भावातीत चेतना के प्रतिबिम्ब के रूप में ज्ञान का आविष्कार होता है। ज्ञान के आविष्कार की मात्रा का फर्क मन की निर्मलता के फर्क के कारण होता है। किसी भी प्रकार के ज्ञान के उदभव के लिए बाह्य साधन, कर्म या क्रिया आवश्यक है। अतः साधक में ज्ञान का आविर्भाव करने के लिए गुरू की आवश्यकता होती है। परस्पर प्रभावित करने की सार्वत्रिक प्रक्रिया के लिए एक दूसरे के पूरक दो भाग के रूप में गुरू–शिष्य हैं। शिष्य में ज्ञान का उदय शिष्य की पात्रता और गुरू की चेतनाशक्ति पर अवलम्बित है। शिष्य की मानसिक स्थिति अगर गुरू की चेतना के आगमन के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में तैयार नहीं होती तो ज्ञान का आदान–प्रदान नहीं हो सकता। इस ब्रह्माण्ड मे कोई भी घटना घटित होने के लिए यह पूर्वशर्त है। जब तक सार्वत्रिक प्रक्रिया के एक दूसरे के पूरक ऐसे दो भाग या दो अवस्थाएँ इक ी नहीं होती तब तक कहीं भी, कोई भी घटना घटित नहीं हो सकती।

'आत्म–निरीक्षण के द्वारा ज्ञान का उदय स्वतः हो सकता है और इसलिए बाह्य गुरू की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है.....' यह मत सर्वस्वीकृत नहीं बन सकता। इतिहास बताता है कि ज्ञान की हर एक शाखा में शिक्षण की प्रक्रिया के लिए शिक्षक की सघन प्रवृत्ति अत्यंत आवश्यक है। यदि किसी भी व्यक्ति में, किसी भी सहायता के सिवाय, सहज रीति से ज्ञान का उदय संभव होता तो स्कूल, कॉलेज एवं यूनिवर्सिटियों की कोई आवश्यकता नहीं रहती। जो लोग 'शिक्षक की सहायता के बिना ही, स्वतंत्र रीति से कोई व्यक्ति कुशल बन सकता है......' ऐसे गलत मार्ग पर ले जाने वाले मत का प्रचार प्रसार करते हैं वे लोग स्वयं तो किसी शिक्षक के द्वारा ही शिक्षित होते हैं। हाँ, ज्ञान के उदय के लिए शिष्य या विद्यार्थी के प्रयास का महत्त्व कम नहीं है। शिक्षक के उपदेश जितना ही उसका भी महत्त्व है।

इस ब्रह्माण्ड में कर्त्ता एवं कर्म सत्य के एक ही स्तर पर स्थित हैं, क्योंकि इसके सिवाय उनके बीच पारस्परिक आदान–प्रदान संभव नहीं हो सकता। अलग स्तर पर स्थित चेतना शक्ति के बीच प्रतिक्रिया नहीं हो सकती। हालांकि शिष्य जिस स्तर पर होता है उस स्तर को माध्यम बनाकर गुरू अपनी उच्च्य चेतना को शिष्य पर केन्द्रित कर सकते हैं। इससे शिष्य के मन का योग्य रूपांतर हो सकता है। गुरू की चेतना के इस कार्य को शक्ति संचार कहा जाता है। इस प्रक्रिया में गुरू की शक्ति शिष्य में प्रविष्ट होती है। ऐसे उदाहरण भी मिल जाते हैं कि शिष्य के बदले में गुरू ने स्वयं ही साधना की हो और उच्च्य चेतना की प्रत्यक्ष सहायता के द्वारा शिष्य के मन की शुद्धि करके उसका ऊर्ध्वीकरण किया हो।

दोषदृष्टिवाले लोग कहते हैं.... "अन्तरात्मा की सलाह लेकर सत्य–असत्य, अच्छा–बुरा हम पहचान सकते है अतः बाह्य गुरू की आवश्यकता नहीं है।"

किन्तु यह बात ध्यान में रहे कि जब तक साधक शुचि और इच्छा–वासनारहितता के शिखर पर नहीं पहुँच जाता तब तक योग्य निर्णय करने में अन्तरात्मा उसे सहायरूप नहीं बन सकती।

पाशवी अन्तरात्मा किसी व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान नहीं दे सकती। मनुष्य के विवेक और बौद्धिक मत पर उसके अव्यक्त और अज्ञात मन का गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी मनुष्यों की बुद्धि सुषुप्त इच्छाओं तथा वासनाओं का एक साधन बन जाती है। मनुष्य की अन्तरात्मा उसके अभिगम, झुकाव, रूचि, शिक्षा, आदत, वृत्तियाँ और अपने समाज के अनुरूप बात ही कहती है। अफ्रीका के जंगली आदिवासी, सुशिक्षित युरोपियन और सदाचार की नींव पर सुविकसित बने हुए योगी की अन्तरात्मा की आवाजें भिन्न–भिन्न होती हैं। बचपन से अलग–अलग ढंग से बड़े हुए दस अलग–अलग व्यक्तियों की दस अलग–अलग अन्तरात्मा होती हैं। विरोचन ने स्वयं ही मनन किया, अपनी अन्तरात्मा का मार्गदर्शन लिया एवं मैं कौन हूँ ? इस समस्या का आत्मनिरीक्षण किया और निश्चय किया कि यह देह ही मूलभूत तत्त्व है।

याद रखना चाहिए कि मनुष्य की अन्तरात्मा पाशवी वृत्तियों, भावनाओं तथा प्राकृत वासनाओं की जाल में फँसी हुई हैं। मनुष्य के मन की वृत्ति विषय और अहं की ओर ही जायगी, आध्यात्मिक मार्ग में नहीं मुड़ेगी। आत्म–साक्षात्कार की सर्वोच्च भूमिका में स्थित गुरू में शिष्य अगर अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण समर्पण कर दे तो साधना–मार्ग के ऐसे भयस्थानों से बच सकता है। ऐसा साधक संसार से परे दिव्य प्रकाश को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य की बुद्धि एवं अन्तरात्मा को जिस प्रकार निर्मित किया जाता है, अभ्यस्त किया जाता है उसी प्रकार वे कार्य करते हैं। सामान्यतः वे दृश्यमान मायाजगत तथा विषय वस्तु की आकांक्षा एवं अहं की आकांक्षा पूर्ण करने के लिए कार्यरत रहते हैं। सजग प्रयत्न के बिना आध्यात्मिक ज्ञान के उच्च सत्य को प्राप्त करने के लिए कार्यरत नहीं होते।

'गुरू की आवश्यकता नहीं है और हरएक को अपनी विवेक–बुद्धि तथा अन्तरात्मा का अनुसरण करना चाहिए.....' ऐसे मत का प्रचार प्रसार करने वाले भूल जाते हैं कि ऐसे मत का प्रचार करके वे स्वयं गुरू की तरह प्रस्तुत हो रहे हैं। 'किसी भी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है' ऐसा सिखाने वालों को उनके शिष्य मानपान और भक्तिभाव अर्पित करते हैं। भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को बोध दिया कि 'तुम स्वयं ही तार्किक विश्लेषण करके मेरे सिद्धान्त की योग्यता–अयोग्यता और सत्यता की जाँच करो। बुद्ध कहते हैं इसलिए सिद्धान्त को सत्य मानकर स्वीकार कर लो ऐसा नहीं।' किसी भी भगवान की पूजा करना, ऐसा उन्होंने सिखाया लेकिन इसका परिणाम यह आया कि महान गुरू एवं भगवान के रूप में उनकी पूजा शुरू हो गई। इस प्रकार स्वयं ही चिन्तन करना चाहिए और गुरू की आवश्यकता नहीं है' इस मत की शिक्षा से स्वाभाविक ही सीखनेवाले के लिए गुरू की आवश्यकता का इन्कार नहीं हो सकता। मनुष्य के अनुभव कर्त्ता कर्म के परस्पर सम्बन्ध की प्रक्रिया पर आधारित है।

पश्चिम में कुछ लोग मानते हैं कि गुरू पर शिष्य का अवलंबन एक मानसिक बन्धन है। मानस–चिकित्सा के मुताबिक ऐसे बन्धन से मुक्त होना जरूरी है। यहाँ स्पष्टता करना अत्यन्त आवश्यक है कि मानस–चिकित्सा वाले मानसिक परावलम्बन से गुरू–शिष्य का सम्बन्ध बिल्कुल भिन्न है। गुरू की उच्च चेतना के आश्रय में शिष्य अपना व्यक्तित्व समर्पित करता है। गुरू की उच्च चेतना शिष्य की चेतना को आवृत्त कर लेती है और उसका ऊर्ध्वीकरण करती है । तदुपरांत, गुरू–शिष्य के व्यक्तिगत सम्बंध एवं शिष्य का गुरू पर अवलम्बन केवल प्रारंभ में ही होता है। बाद में तो वह परब्रह्म की शरणागति बन जाती है। गुरू सनातन शक्ति के प्रतीक बनते हैं। किसी दर्दी के मानस–चिकित्सक के प्रति परावलम्बन का सम्बन्ध तोड़ना अनिवार्य है, क्योंकि यह सम्बन्ध दर्दी का मानसिक तनाव कम करने के लिए अस्थायी सम्बन्ध है। जब चिकित्सा पूरी हो जाती है तब यह परावलम्बन तोड़ दिया जाता है और दर्दी पूर्व की भाँति अलग और स्वतंत्र हो जाता है। किन्तु गुरू–शिष्य के

सम्बन्ध में, प्रारंभ में या अन्त में, कभी भी अनिच्छनीय परावलम्बन नहीं होता। यह तो केवल पराशक्ति पर ही अवलम्बन होता है। गुरू को देह स्वरूप में यह एक व्यक्ति के स्वरूप में नहीं माना जाता है। गुरू पर अवलम्बन शिष्य के पक्ष में देखा जाय तो आत्मशुद्धि की निरंतर प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिष्य ईश्वरीय परम तत्त्व का अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

कुछ लोग उदाहरण देते हैं कि प्राचीन समय में भी याज्ञवल्क्य ने अपने गुरू वैशंपायन से अलग होकर, किसी भी अन्य गुरू की सहाय के बिना ही, स्वतंत्र रीति से आध्यात्मिक विकास किया था। परन्तु याज्ञवाल्क्य गुरू से अलग हो गये इसका अर्थ यह नहीं है कि वे गुरू के वफादार नहीं थे। गुरू ने क्रोधित होकर कहा था कि उन्होंने दी हुई विद्या लौटाकर आश्रम छोड़कर चले जाओ। फलतः याज्ञवल्क्य मुनि में मानव–गुरू के प्रति अश्रद्धा का प्रादुर्भाव हुआ लेकिन उन्होंने गुरू की खोज करना छोड़ नहीं दिया। उन्होंने गुरू की आवश्यकता का अस्वीकार नहीं किया है और आध्यात्मिक मार्ग में स्वतंत्र रीति से आगे बढ़ा जा सकता है ऐसा भी नहीं माना है। उन्होंने उच्चतर गुरू सूर्यनारायण का आश्रय लिया। जब उन्होंने फिर से ज्ञान प्राप्त किया तब सूर्य की कृपा प्राप्त करने के लिए याज्ञवल्क्य मुनि के दृढ़ संकल्प बल एवं हिम्मत पर प्रसन्न होकर पुराने गुरू ने अपने अन्य शिष्यों को ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रार्थना की तब याज्ञवल्क्य मुनि ने अन्य शिष्यों को भी ज्ञान प्रदान किया ।

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के द्वारा अभिव्यक्त ईश्वर ही सर्वोच्च गुरू है। हमारे इर्दगिर्द जो विश्व है वह हमारे जीवन में बोध देने वाला शिक्षक है। हम अगर प्रकृति की लीला के प्रति सजग रहें तो हमारे समक्ष होने वाली हरएक घटना में गहन रहस्य एवं बोधपाठ मिल जाता है। यह विश्व ईश्वर का साकार स्वरूप है। उसकी लीला गूढ़ और रहस्यमय है। वह लीला आन्तर एवं बाह्य, व्यक्तिलक्षी एवं वस्तुलक्षी, हर प्रकार के जीवन के अनुभवों को समाविष्ट कर लेती है। उसको जानने से, समझने से हमारे अनुभव, भावना एवं समझ का योग्य विकास होता है। परब्रह्म के प्रति हमारे विकास के लिए परिवर्तन संभव बनता है।

अगर हम प्रकृति की उत्क्रान्ति की प्रक्रिया के साथ व्यक्तिगत विकास को नहीं जोड़ेंगे तो केवल याँत्रिक विकास होगा। उसमें व्यक्ति अनिवार्यतः घसीटा जाता है। उस पर किसी व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता। किन्तु विकास जब परम चेतना के अंश स्वरूप होता है और व्यक्ति की अपनी चेतना में घुलमिल जाता है तब योग की प्रक्रिया घटित होती है। व्यक्ति की चेतना अपने अस्तित्व को आत्मा के साथ पहचानकर, अपने आत्मा में वैश्विक उत्क्रान्ति का अनुभव करे– यह प्रक्रिया योग है। अन्य दृष्टि से देखें तो, ब्रह्माण्ड की लीला का लघु स्वरूप में अपनी आत्मा में अनुभव करना योग है। जब यह स्थिति प्राप्त होती है तब व्यक्ति ईश्वरेच्छा की सम्पूर्णतः शरण हो जाता है। अथवा पराशक्ति के नियम उसको इतने तादृश बन जाते हैं कि प्रकृति की घटनाओं एवं मनुष्य की इच्छाओं के बीच संघर्षों का पूर्णतः लोप हो जाता है। उस व्यक्ति की अभिलाषाएँ दैवी इच्छा या प्रकृति की घटनाओं से अभिन्न बन जाती हैं।

गुरू की यह सर्वोच्च विभावना है और हर साधक को यह प्राप्त करना है। व्यक्तिगत गुरू का स्वीकार करना यानी साधक की परब्रह्म में विलीन होने की तैयारी और उस दिशा में एक सोपान। गुरू की विभावना के विकास के तथा साधक की गुरू के प्रति शरणागति के विभिन्न सोपान हैं। फिर भी साधना के किसी भी सोपान पर गुरू की आवश्यकता का इन्कार नहीं हो सकता, क्योंकि आत्म–साक्षात्कार के लिए तड़पते हुए साधक को होने वाली परब्रह्म की अनुभूति का नाम गुरू है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गुरूभक्तियोग की महत्ता

ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्दजी

जिस प्रकार शीघ्र ईश्वरदर्शन के लिए कलियुग–साधना के रूप में कीर्तन–साधना है उसी प्रकार इस संशय, नास्तिकता, अभिमान और अहंकार के युग में योग की एक नई पद्धति यहाँ प्रस्तुत है–गुरूभक्तियोग। यह योग अदभुत है। इसकी शक्ति असीम है। इसका प्रभाव अमोघ है। इसकी महत्ता अवर्णनीय है। इस युग के लिए उपयोगी इस विशेष योग–पद्धति के द्वारा आप इस हाड़–चाम के पार्थिव देह में रहते हुए ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। इसी जीवन में आप उन्हें अपने साथ विचरण करते हुए निहार सकते हैं।

साधना का बड़ा दुश्मन रजोगुणी अहंकार है। अभिमान को निर्मूल करने के लिए एवं विषमय अहंकार को पिघलाने के लिए गुरूभक्तियोग उत्तम और सबसे अधिक सचोट साधनमार्ग है। जिस प्रकार किसी रोग के विषाणु निर्मूल करने के लिए कोई विशेष प्रकार की जन्तुनाशक दवाई आवश्यक है उसी प्रकार अविद्या और अहंकार के नाश के लिए गुरूभक्तियोग सबसे अधिक प्रभावशाली, अमूल्य और निश्चित प्रकार का उपचार है। वह सबसे अधिक प्रभावशाली 'मायानाशक' और 'अहंकार नाशक' है। गुरूभक्तियोग की भावना में जो सदभागी शिष्य निष्ठापूर्वक सराबोर होते हैं उन पर माया और अहंकार के रोग का कोई असर नहीं होता। इस योग का आश्रय लेने वाला व्यक्ति सचमुच भाग्यशाली है। क्योंकि वह योग के अन्य प्रकारों में भी सर्वोच्च सफलता हासिल करेगा। उसको कर्म, भक्ति, ध्यान और ज्ञानयोग के फल पूर्णतः प्राप्त होंगे।

इस योग में संलग्न होने के लिए तीन गुणों की आवश्यकता है: निष्ठा, श्रद्धा और आज्ञापालन। पूर्णता के ध्येय में सन्निष्ठ रहो। संशयी और ढीले ढाले मत रहना। अपने स्वीकृत गुरू में सम्पूर्ण श्रद्धा रखो। अपने मन में संशय की छाया को भी फटकने मत देना। एक बार गुरू में सम्पूर्ण श्रद्धा दृढ़ कर लेने के बाद आप समझने लगेंगे कि उनका उपदेश आपकी श्रेष्ठ भलाई के लिए ही होता है। अतः उनके शब्द का अन्तःकरणपूर्वक पालन करो। उनके उपदेश का अक्षरशः अनुसरण करो। आप हृदयपूर्वक इस प्रकार करेंगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप पूर्णता को प्राप्त करेंगे ही। मैं पुनः दृढ़तापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प.पू. संत श्री आसारामजी बापूः एक अदभुत विभूति

ध्यान और योग के अनुभव कैसे प्राप्त किये जाएँ? पूजा पाठ, जप–तप ध्यान करने पर भी जीवन में व्याप्त अतृप्ति का कैसे निवारण करें? ईश्वर में कैसे मन लगायें? अपने अंदर ही निहित आत्मानंद के खजाने को कैसे खोलें? व्यावहारिक जीवन में परेशान करने वाले भय, चिन्ता, निराशा, हताशा, आदि को जीवन से दूर कैसे भगायें? निश्चिंतता, निर्भयता, निरन्तर प्रसन्नता प्राप्त करके जीवन को आनन्द से कैसे महकायें? अपने प्राचीन शास्त्रों में वर्णित आनन्द–स्वरूप ईश्वर के अस्तित्व की झाँकी हम अपने हृदय में कैसे पायें? क्या आज भी यह सब सम्भव है?

हाँ, सम्भव है, अवश्यमेव। मानव को चिंतित बनाने वाले इन प्रश्नों का समाधान साधना के निश्चित परिणामों के द्वारा कराके पिपासु साधकों के जीवन को ईश्वराभिमुख करके उन्हें मधुरता प्रदान

करने वाले ऋषि–महर्षि और संत–महापुरूष आज भी समाज में मौजूद है। **'बहुरत्ना वसुन्धरा।'** इन संत महापुरूषों की सुगंधित हारमाला में पूज्य संत श्री आसारामजी बापू एक पूर्ण विकसित सुमधुर पुष्प हैं।

अहमदाबाद शहर में, किन्तु शहरी वातावरण से दूर साबरमती नदी की मनमोहक प्राकृतिक गोद में त्वरित गति से विकसित हुए उनके पावन आश्रम के अध्यात्मपोषक वातावरण में आज हजारों साधक जाकर भक्तियोग, नादानुसंधानयोग, ज्ञानयोग एवं कुण्डलिनी योग की शक्तिपात वर्षा का लाभ उठाकर अपने व्यक्तिगत पारमार्थिक जीवन को अधिकाधिक उन्नत एवं आनन्दमय बना रहे हैं। चित्त में समता का प्रसाद पाकर वे व्यावहारिक जीवन–नौका को बड़े ही उत्साह से खे–खेकर निहाल होते जाते हैं।

प्राचीन ऋषि कुलों का स्मरण कराने वाले इस पावन आश्रम में कुण्डलिनी योग की सच्ची अनुभूति कराके आत्मिक प्रेमसागर में डुबकी लगवाने वाले, मानव समुदाय को ईश्वरीय आनन्द में सराबोर करने वाले, तप्त हृदयवाले हजारों संसारयात्रियों के आश्रयदाता, वट–वृक्षतुल्य, प्रेमपूर्ण हृदयवाले, अगमनिगम के औलिया, परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू ने सहज सान्निध्य एवं सत्संग मात्र लोगों को वेदान्त के अमृत–रस का स्वाद चखा रहे हैं।

संत श्री के नाम को सुनकर, उनकी पुस्तकें पढ़कर अनेक सज्जन उनके दर्शन और मुलाकात के लिए कुतूहलवश एक बार उनके आश्रम में आते है, फिर तो वे नियमित आने वाले साधक बनकर योग और वेदान्त के रसिक बन जाते हैं। वे अपने जीवन–प्रवाह को अमृतमय आनन्द–सिन्धु की तरफ बहते हुए देखकर हृदय में गदगदित हो जाते हैं, आनन्द में सराबोर हो जाते हैं।

एक अजब योगी

आश्रम में जाकर पूज्यश्री के दर्शन और आध्यात्मिक तेज से उद्दीप्त नयनामृत से सिक्त एक सुप्रसिद्ध लेखक, वक्ता, तंत्री सज्जन ने लिखा हैः

"कोई मुझसे पूछे की अहमदाबाद के आसपास कौन सच्चा योगी है? मैं तुरन्त संत श्री आसारामजी बापू का नाम दूँगा। साबरतट स्थित एक भव्य एवं विशाल आश्रम में विराजमान इन दिव्यात्मा महापुरूष का दर्शन करना, वास्तव में जीवन की एक उपलब्धि है। उनके निकट में पहुँचना, निश्चित ही अहोभाग्य की सीमा पर पहुँचना है।

योगियों की खोज में मैं काफी भटका हूँ, पर्वत और गुफाओं के चक्कर काटने में कभी पीछे मुड़कर देखा तक नहीं। परन्तु प्रभुत्वशाली व्यक्ति के महाधनी ऐसे संत श्री आसारामजी बापू से मिलते ही मेरे अन्तर में प्रतीति सी हो गई कि यहाँ तो शुद्धतम सुवर्ण ही सुवर्ण है।"

प्रेम और प्रज्ञा के सागर

संत श्री की आँखों में ऐसा दिव्य तेज जगमगाया करता है कि उनके अन्दर की गहरी अतल दिव्यता में डूब जाने की कामना करने वाला क्षणभर में ही उसमें डूब जाता है। मानो, उन आँखों में प्रेम और प्रकाश का असीम सागर हिलौरें ले रहा है।

वे सरल भी इतने कि छोटे–छोटे बालकों की तरह व्यवहार करने लगें। उनमें ज्ञान भी ऐसा अदभुत कि विकट पहेली को पलभर में सुलझा कर रख दें। उनकी वाणी की बुनकार ऐसी कि सजगता के तट पर सोनेवाले को क्षणभर में जगाकर ज्ञान–सागर की मस्ती में लीन कर दें।

अनेक शक्तियों के स्वामी

अन्यत्र कहीं देखी न गई हो ऐसी योगसिद्धि मैंने अनेक बार उनमें देखी है। अनेक दरिद्रों को उन्होंने सुख और समृद्धि के सागर में सैर करने वाले बना दिये हैं। उनके चुम्बकीय शक्ति–सम्पन्न

पावन सान्निध्य में असंख्य साधकों द्वारा स्वानुभूत चमत्कारों और दिव्य अनुभवों का आलेखन करने लगूँ तो एक विराट भागवत कथा तैयार हो जाय। आगत व्यक्ति के मन को जान लेने की शक्ति तो उनमें इतनी तीव्रता से सक्रिय रहती है मानो समस्त नभमण्डल को वे अपने हाथों में लेकर देख रहे हों।

ऐसे परम सिद्ध पुरूष के सान्निध्य में, उनकी प्रेरक पावन अमृतवाणी में से आपकी जीवन–समस्याओं का सांगोपांग हल आपको अवश्य मिल जायगा।

साबरतट पर स्थित चैतन्य लोक तुल्य संत श्री आसारामजी आश्रम में प्रविष्ट होते ही एक अदभुत शान्ति की अनुभूति होने लगती है। प्रत्येक रविवार और बुधवार को दोपहर ११ बजे से और हररोज शाम ६ बजे से एवं ध्यानयोग शिविरों के दौरान आश्रम में ज्ञानगंगा उमड़ती रहती है। आध्यात्मिक अनुभूतियों के उपवन लहलहाते हैं। आश्रम का सम्पूर्ण वातावरण मानो एक चैतन्य विद्युत्तेज से छलछलाता है। परम चैतन्य मानो स्वयं ही मूर्त्त स्वरूप धारण कर प्रेम और प्रकाश का सागर लहराते है। विद्यार्थियों के लिए आयोजित योग शिविरों में अनेक विद्यार्थियों एवं अध्यापकों ने अपने जीवन विकास का अनोखा पथ पा लिया है।

पूज्य बापूजी का विद्युन्मय व्यक्तित्व, अन्तस्तल की गहराई में से उमड़ती हुई वाणी की गंगधारा और आश्रम के समग्र वातावरण में फैलती हुई दिव्यता का आस्वाद एक बार भी जिस किसी को मिल जाता है वह कदापि उसे भूल नहीं सकता। जो अपने उर के आँगन में अमृत ग्रहण करने के लिए तत्पर हो, उसे अमृत का आस्वाद अवश्य मिल जाता है।

ब्रह्मनिष्ठ, योगसिद्ध, माधुर्य के महासिन्धु समान संत श्री आसाराम जी बापू का सान्निध्य–सेवन करने वाले का और अमृतवर्षा को संग्रहित करने वाले का अल्प पुरूषार्थ भी व्यर्थ नहीं जायेगा ऐसा अनेकों का अनुभव बोल रहा है।

गुरूतत्त्व

जिस प्रकार पिता या पितामह की सेवा करने से पुत्र या पौत्र खुश होता है इसी प्रकार गुरू की सेवा करने से मंत्र प्रसन्न होता है। गुरू, मंत्र एवं इष्टदेव में कोई भेद नहीं मानना। गुरू ही ईश्वर हैं। उनको केवल मानव ही नहीं मानना। जिस स्थान में गुरू निवास कर रहे हैं वह स्थान कैलास हैं। जिस घर में वे रहते हैं वह काशी या वाराणसी है। उनके पावन चरणों का पानी गंगाजी स्वयं हैं। उनके पावन मुख से उच्चारित मंत्र रक्षणकर्त्ता ब्रह्मा स्वयं ही हैं।

गुरू की मूर्ति ध्यान का मूल है। गुरू के चरणकमल पूजा का मूल है। गुरू का वचन मोक्ष का मूल है।

गुरू तीर्थस्थान हैं। गुरू अग्नि हैं। गुरू सूर्य हैं। गुरू समस्त जगत हैं। समस्त विश्व के तीर्थधाम गुरू के चरणकमलों में बस रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती, इन्द्र आदि सब देव और सब पवित्र नदियाँ शाश्वत काल से गुरू की देह में स्थित हैं। केवल शिव ही गुरू हैं।

गुरू और इष्टदेव में कोई भेद नहीं है। जो साधना एवं योग के विभिन्न प्रकार सिखाते है वे शिक्षागुरू हैं। सबमें सर्वोच्च गुरू वे हैं जिनसे इष्टदेव का मंत्र श्रवण किया जाता है और सीखा जाता है। उनके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

अगर गुरू प्रसन्न हों तो भगवान प्रसन्न होते हैं। गुरू नाराज हों तो भगवान नाराज होते हैं। गुरू इष्टदेवता के पितामह हैं।

जो मन, वचन, कर्म से पवित्र हैं, इन्द्रियों पर जिनका संयम है, जिनको शास्त्रों का ज्ञान है, जो सत्यव्रती एवं प्रशांत हैं, जिनको ईश्वर–साक्षात्कार हुआ है वे गुरू हैं।

बुरे चरित्रवाला व्यक्ति गुरू नहीं हो सकता। शक्तिशाली शिष्यों को कभी शक्तिशाली गुरूओं की कमी नहीं रहती। शिष्य को गुरू में जितनी श्रद्धा होती है उतने फल की उसे प्राप्ति होती है। किसी आदमी के पास अगर यूनिवर्सिटी की उपाधियाँ हों तो इससे वह गुरू की कसौटी करने की योग्यतावाला नहीं बन जाता। गुरू के आध्यात्मिक ज्ञान की कसौटी करना यह किसी भी मनुष्य के लिए मूर्खता एवं उद्दण्डता की पराकाष्ठा है। ऐसा व्यक्ति दुनियावी ज्ञान के मिथ्याभिमान से अन्ध बना हुआ है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरण १ – गुरूभक्तियोग

गुरूभक्तियोग के अंश

१. गुरूभक्तियोग माना सदगुरू को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना।

२. गुरूभक्तियोग के आठ महत्त्वपूर्ण अंग इस प्रकार हैं– (अ) गुरू भक्तियोगके अभ्यास के लिए सच्चे हृदय की स्थिर महेच्छा। (ब) सदगुरू के विचार, वाणी और कार्यों में सम्पूर्ण श्रद्धा। (क) गुरू के नाम का उच्चारण और गुरू को नम्रतापूर्वक साष्टांग प्रणाम। (ड) सम्पूर्ण आज्ञाकारिता के साथ गुरू के आदेशों का पालन। (प) फलप्राप्ति की अपेक्षा बिना सदगुरू की सेवा। (फ) भक्तिभावपूर्वक हररोज सदगुरू के चरणकमलों की पूजा। (भ) सदगुरू के दैवी कार्य के लिए आत्म–समर्पण.... तन, मन, धन समर्पण। (म) गुरू की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए एवं उनका पवित्र उपदेश सुनकर उसका आचरण करने के लिए सदगुरू के पवित्र चरणों का ध्यान।

३. गुरूभक्तियोग योग का एक स्वतंत्र प्रकार है।

४. मुमुक्षु जब तक गुरूभक्तियोग का अभ्यास नहीं करता। तब तक ईश्वर के साथ एकरूपता होने के लिए आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश करना उसके लिए सम्भव नहीं है।

५. जो व्यक्ति गुरूभक्तियोग की फिलाँसफी समझता है वही गुरू को बिनशरती आत्म–समर्पण कर सकता है।

६. जीवन के परम ध्येय अर्थात् आत्म–साक्षात्कार की प्राप्ति गुरूभक्तियोग के अभ्यास द्वारा ही हो सकती है।

७. गुरूभक्ति का योग सच्चा एवं सुरक्षित योग है, जिसका अभ्यास करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं है।

८. आज्ञाकारी बनकर गुरू के आदेशों का पालन करना, उनके उपदेशों को जीवन में उतारना, यही गुरूभक्तियोग का सार है।

गुरूभक्तियोग का हेतु

९. मनुष्य को पदार्थ एवं प्रकृति के बन्धनों से मुक्ति दिलाना और गुरू को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करके 'स्व' के अबाध्य स्वतंत्र स्वभाव का भान कराना यह गुरूभक्तियोग का हेतु है।

१०. जो व्यक्ति गुरूभक्तियोग का अभ्यास करता है वह बिना किसी विपत्ति से अहंभाव को निर्मूल कर सकता है, संसार के मलिन जल को बहुत सरलता से पार कर जाता है और अमरत्व एवं शाश्वत सुख प्राप्त करता है।
११. गुरूभक्तियोग मन को शान्त और निश्चल बनाने वाला है।
१२. गुरूभक्तियोग दिव्य सुख के द्वार खोलने की अमोघ कुँजी है।
१३. गुरूभक्तियोग के द्वारा सदगुरू की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है।

गुरूभक्तियोग के सिद्धान्त

१४. नम्रतापूर्वक पूज्यश्री सदगुरू के पदारविन्द के पास जाओ। सदगुरू के जीवनदायी चरणों में साष्टांग प्रणाम करो। सदगुरू के चरणकमल की शरण में जाओ। सदगुरू के पावन चरणों की पूजा करो। सदगुरू के पावन चरणों का ध्यान करो। सदगुरू के पावन चरणों में मूल्यवान अर्घ्य अर्पण करो। सदगुरू के यशःकारी चरणों की सेवा में जीवन अर्पण करो। सदगुरू के दैवी चरणों की धूलि बन जाओ। ऐसा गुरूभक्त हठयोगी, लययोगी और राजयोगियों से ज्यादा सरलतापूर्वक एवं सलामत रीति से सत्य स्वरूप का साक्षात्कार करके धन्य हो जाता है।
१५. सदगुरू के दैवी पावन चरणों में आत्मसमर्पण करने वाले को निश्चिन्तता, निर्भयता और आनन्द सहजता से प्राप्त होते है। वह लाभान्वित हो जाता है।
१६. आपको गुरूभक्तियोग के मार्ग द्वारा सच्चे हृदय से, तत्परतापूर्वक प्रयास करना चाहिए।
१७. गुरू के प्रति भक्ति इस योग का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।
१८. पवित्र शास्त्रों के विशेषज्ञ ब्रह्मनिष्ठ गुरू के विचार, वाणी और कार्यों में सम्पूर्ण श्रद्धा गुरूभक्तियोग का सार है।

गुरूभक्तियोग एक विज्ञान के रूप में

१९. इस युग में आचरण किया जा सके ऐसा, सबसे ऊँचा और सबसे सरल योग गुरूभक्तियोग है।
२०. गुरूभक्तियोग की फिलासफी में सबसे बड़ी बात गुरू को परमेश्वर के साथ एकरूप मानना है।
२१. गुरूभक्तियोग की फिलासफी का व्यावहारिक स्वरूप यह है कि गुरू को अपने इष्टदेवता से अभिन्न मानें।
२२. गुरूभक्तियोग ऐसी फिलाँसफी नहीं है जो पत्र–व्यवहार या व्याख्यानों के द्वारा सिखाई जा सके। इसमें तो शिष्य को कई वर्ष तक गुरू के पास रहकर शिस्त एवं संयमपूर्ण जीवन बिताना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए एवं गहरा ध्यान करना चाहिए।
२३. गुरूभक्तियोग सर्वोत्तम विज्ञान है।

गुरूभक्तियोग का फल

२४. गुरूभक्तियोग अमरत्व, परम सुख, मुक्ति, सम्पूर्णता, शाश्वत आनन्द और चिरंतन शान्ति प्रदान करता है।
२५. गुरूभक्तियोग का अभ्यास सांसारिक पदार्थों के प्रति निःस्पृहता और वैराग्य प्रेरित करता है तथा तृष्णा का छेदन करता है एवं कैवल्य मोक्ष देता है।

२६. गुरूभक्तियोग का अभ्यास भावनाओं एवं तृष्णाओं पर विजय पाने में शिष्य को सहायरूप बनता है, प्रलोभनों के साथ टक्कर लेने में तथा मन को क्षुब्ध करने वाले तत्त्वों का नाश करने में सहाय करता है। अन्धकार को पार करके प्रकाश की ओर ले जाने वाली गुरूकृपा करने के लिए शिष्य को योग्य बनाता है।

२७. गुरूभक्तियोग का अभ्यास आपको भय, अज्ञान, निराशा, संशय, रोग, चिन्ता आदि से मुक्त होने के लिए शक्तिमान बनाता है और मोक्ष, परम शान्ति और शाश्वत आनन्द प्रदान करता है।

गुरूभक्तियोग की साधना

२८. गुरूभक्तियोग का अर्थ है व्यक्तिगत भावनाओं, इच्छाओं, समझ–बुद्धि एवं निश्चयात्मक बुद्धि के परिवर्तन द्वारा अहोभाव को अनंत चेतना स्वरूप में परिणत करना।

२९. गुरूभक्तियोग गुरूकृपा के द्वारा प्राप्त सचोट, सुन्दर अनुशासन का मार्ग है।

गुरूभक्तियोग का महत्त्व

३०. कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग आदि सब योगों की नींव गुरूभक्तियोग है।

३१. जो मनुष्य गुरूभक्तियोग के मार्ग से विमुख है वह अज्ञान, अन्धकार एवं मृत्यु की परम्परा को प्राप्त होता है।

३२. गुरूभक्तियोग का अभ्यास जीवन के परम ध्येय की प्राप्ति का मार्ग दिखाता है।

३३. गुरूभक्तियोग का अभ्यास सबके लिए खुल्ला है। सब महात्मा एवं विद्वान पुरूषों ने गुरूभक्तियोग के अभ्यास द्वारा ही महान कार्य किये हैं। जैसे एकनाथ महाराज, पूरणपोड़ा, तोटकाचार्य, एकलव्य, शबरी, सहजोबाई आदि।

३४. गुरूभक्तियोग में सब योग समाविष्ट हो जाते है। गुरूभक्तियोग के आश्रय के बिना अन्य कई योग, जिनका आचरण अति कठिन है, उनका सम्पूर्ण अभ्यास किसी से नहीं हो सकता।

३५. गुरूभक्तियोग में आचार्य की उपासना के द्वारा गुरूकृपा की प्राप्ति को खूब महत्त्व दिया जाता है।

३६. गुरूभक्तियोग वेद एवं उपनिषद के समय जितना प्राचीन है।

३७. गुरूभक्तियोग जीवन के सब दुःख एवं दर्दों को दूर करने का मार्ग दिखाता है।

३८. गुरूभक्तियोग का मार्ग केवल योग्य शिष्य को ही तत्काल फल देनेवाला है।

३९. गुरूभक्तियोग अहंभाव के नाश एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति में परिणत होता है।

४०. गुरूभक्तियोग सर्वोत्तम योग है।

इस मार्ग के भयस्थान

४१. गुरू के पावन चरणों में साष्टांग प्रणाम करने में संकोच होना यह गुरूभक्तियोग के अभ्यास में बड़ा अवरोध है।

४२. आत्म–बड़प्पन, आत्म–न्यायीपन, मिथ्याभिमान, आत्मंवचना, दर्प, स्वच्छन्दीपना, दीर्घसूत्रता, हठाग्रह, छिद्रन्वेषी, कुसंग, बेईमानी, अभिमान, विषय–वासना, क्रोध, लोभ, अहंभाव .... ये सब गुरूभक्तियोग के मार्ग में आनेवाले विघ्न हैं।

४३. गुरूभक्तियोग के सतत अभ्यास के द्वारा मन की चंचल प्रकृति का नाश करो।

४४. जब मन की बिखरी हुई शक्ति के किरण एकत्रित होते हैं तब चमत्कारिक कार्य कर सकते हैं।
४५. गुरूभक्तियोग का शास्त्र समाधि एवं आत्म–साक्षात्कार करने हेतु हृदयशुद्धि प्राप्त करने के लिए गुरूसेवा पर खूब जोर देता है।
४६. सच्चा शिष्य गुरूभक्तियोग के अभ्यास में लगा रहता है।
४७. पहले गुरूभक्तियोग की फिलाँसफी समझो, फिर उसका आचरण करो। आपको सफलता अवश्य मिलेगी।
४८. तमाम दुर्गुणों को निर्मूल करने का एकमात्र असरकारक उपाय है गुरूभक्तियोग का आचरण।

गुरूभक्तियोग के मूल सिद्धान्त

४९. गुरू में अखण्ड श्रद्धा गुरूभक्तियोग रूपी वृक्ष का मूल है।
५०. उत्तरोत्तर वर्धमान भक्तिभावना, नम्रता, आज्ञा–पालन आदि इस वृक्ष की शाखाएँ हैं। सेवा फूल है। गुरू को आत्मसमर्पण करना अमर फल है।
५१. अगर आपको गुरू के जीवनदायक चरणों में दृढ़ श्रद्धा एवं भक्तिभाव हो तो आपको गुरूभक्तियोग के अभ्यास में सफलता अवश्य मिलेगी।
५२. सच्चे हृदयपूर्वक गुरू की शरण में जाना ही गुरूभक्तियोग का सार है।
५३. गुरूभक्तियोग का अभ्यास माने गुरू के प्रति शुद्ध उत्कट प्रेम।
५४. ईमानदारी के सिवाय गुरूभक्तियोग में बिल्कुल प्रगति नहीं हो सकती।
५५. महान योगी गुरू के आश्रय में उच्च आध्यात्मिक स्पन्नदनोंवाले शान्त स्थान में रहो। फिर उनकी निगरानी में गुरूभक्तियोग का अभ्यास करो। तभी आपको गुरूभक्तियोग में सफलता मिलेगी।
५६. ब्रह्मनिष्ठ गुरू के चरणकमल में बिनशर्ती आत्मसमर्पण करना ही गुरूभक्तियोग का मुख्य सिद्धान्त है।

गुरूभक्तियोग के मुख्य सिद्धान्त

५७. गुरूभक्तियोग की फिलासफी के मुताबिक गुरू एवं ईश्वर एकरूप है। अतः गुरू के प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना अत्यंत आवश्यक है।
५८. गुरू के प्रति सम्पूर्ण आत्म–समर्पण करना यह गुरूभक्ति का सर्वोच्च सोपान है।
५९. गुरूभक्तियोग के अभ्यास में गुरूसेवा सर्वस्व है।
६०. गुरूकृपा गुरूभक्तियोग का आखिरी ध्येय है।
६१. मोटी बुद्धि का शिष्य गुरूभक्तियोग के अभ्यास में कोई निश्चित प्रगति नहीं कर सकता।
६२. जो शिष्य गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना चाहता है उसके लिए कुसंग शत्रु के समान है।
६३. अगर आपको गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना हो तो विषयी जीवन का त्याग करो।

शाश्वत सुख का मार्ग

६४. जो व्यक्ति दुःख को पार करके जीवन में सुख एवं आनन्द प्राप्त करना चाहता है उसे अन्तःकरणपूर्वक गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना जरूरी है।
६५. सच्चा एवं शाश्वत सुख तो गुरूसेवायोग का आश्रय लेने से ही मिल सकता है, नाशवान पदार्थों से नहीं।

६६. जन्म–मृत्यु के लगातार चलने वाले चक्कर से छूटने का कोई उपाय नहीं है क्या ? सुख–दुःख, हर्ष–शोक के द्वन्द्वों में से मुक्ति नहीं मिल सकती क्या ? सुन, हे शिष्य ! इसका एक निश्चित उपाय है। नाशवान विषयी पदार्थों में से अपना मन वापस खींच ले और गुरूभक्तियोग का आश्रय ले। इससे तू सुख–दुःख, हर्ष–शोक, जन्म–मृत्यु के द्वन्द्वों से पार हो जायेगा।
६७. मनुष्य जब गुरूभक्तियोग का आश्रय लेता है तभी उसका सच्चा जीवन शुरू होता है जो व्यक्ति गुरूभक्तियोग का अभ्यास करता है उसे इस लोक में एवं परलोक में चिरंतन सुख प्राप्त होता है।
६८. गुरूभक्तियोग उसके अभ्यास को चिरायु एवं शाश्वत सुख प्रदान करता है।
६९. मन ही इस संसार एवं उसकी प्रक्रिया का मूल है। मन ही बन्धन और मोक्ष, सुख और दुःख का मूल है। इस मन को केवल गुरूभक्तियोग के द्वारा ही संयम में रखा जा सकता है।
७०. गुरूभक्तियोग अमरत्व, शाश्वत सुख, मुक्ति, पूर्णता, अखूट आनन्द और चिरंतन शान्ति देनेवाला है।

गुरूभक्तियोग की महत्ता

७१. परम शान्ति का राजमार्ग गुरूभक्तियोग के अभ्यास से शुरू होता है।
७२. जो जो सिद्धियाँ संन्यास, त्याग, अन्य योग, दान एवं शुभ कार्य आदि से प्राप्त की जा सकती हैं वे सब सिद्धियाँ गुरूभक्तियोग के अभ्यास के शीघ्र प्राप्त हो सकती हैं।
७३. गुरूभक्तियोग एक शुद्ध विज्ञान है, जो निम्न प्रकृति को वश में लाकर परम सुख प्राप्त करने की पद्धति हमें सिखाता है।
७४. कुछ लोग मानते हैं कि गुरूसेवायोग निम्न कोटि का योग है। आध्यात्मिक रहस्य के बारे में यह उनकी बड़ी गलतफहमी है।
७५. गुरूभक्तियोग, गुरूसेवायोग, गुरूशरणयोग आदि समानार्थी शब्द हैं। उनमें कोई अर्थभेद नहीं है।
७६. गुरूभक्तियोग सब योगों का राजा है।
७७. गुरूभक्तियोग ईश्वरज्ञान के लिए सबसे सरल, सबसे निश्चित, सबसे शीघ्रगामी, सबसे सस्ता भयरहित मार्ग है। आप सब इसी जन्म में गुरूभक्तियोग के द्वारा ईश्वरज्ञान प्राप्त करो यही शुभ कामना !

शिष्य को सूचनाएँ

७८. गुरूभक्तियोग का आश्रय लेकर आप अपनी खोयी हुई दिव्यता को पुनः प्राप्त करो, सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु आदि सब द्वन्द्वों से पार हो जाओ।
७९. जंगली बाघ, शेर या हाथी को पालना बहुत सरल है, पानी या आग के ऊपर चलना बहुत सरल है लेकिन जब तक मनुष्य को गुरूभक्तियोग के अभ्यास के लिए हृदय की तमन्ना नहीं जागती तब तक सदगुरू के चरणकमलों की शरण में जाना बहुत मुश्किल है।
८०. गुरूभक्तियोग माने गुरू की सेवा के द्वारा मन और उसके विकारों पर नियंत्रण एवं पुनःसंस्करण।
८१. गुरू को सम्पूर्ण बिनशर्ती शरणागति करना गुरूभक्ति प्राप्त करने के लिए निश्चित मार्ग है।
८२. गुरूभक्तियोग की नींव गुरू के ऊपर अखण्ड श्रद्धा में निहित है।
८३. अगर आपको सचमुच ईश्वर की आवश्यकता हो तो सांसारिक सुखभोगों से दूर रहो और गुरूभक्तियोग का आश्रय लो।
८४. किसी भी प्रकार की रूकावट के बिना गुरूभक्तियोग का अभ्यास जारी रखो।

८५. गुरूभक्तियोग का अभ्यास ही मनुष्य को जीवन के हर क्षेत्र में निर्भय एवं सदा सुखी बना सकता है।
८६. गुरूभक्तियोग के द्वारा अपने भीतर ही अमर आत्मा की खोज करो।
८७. गुरूभक्तियोग को जीवन का एकमात्र हेतु, उद्देश्य एवं सच्चे रस का विषय बनाओ। इससे आपको परम सुख की प्राप्ति होगी।
८८. गुरूभक्तियोग ज्ञानप्राप्ति में सहायक है।
८९. गुरूभक्तियोग का मुख्य हेतु तुफानी इन्द्रियों पर एवं भटकते हुए मन पर नियंत्रण पाना है।
९०. गुरूभक्तियोग हिन्दू संस्कृति की एक प्राचीन शाखा है जो मनुष्य को शाश्वत सुख के मार्ग में ले जाती है और ईश्वर के साथ सुखद समन्वय करा देती है।
९१. गुरूभक्तियोग आध्यात्मिक और मानसिक आत्म-विकास का शास्त्र है।
९२. गुरूभक्तियोग का हेतु मनुष्य को विषयों के बन्धन से मुक्त करके उसे शाश्वत सुख और दैवी शक्ति की मूल स्थिति की पुनः प्राप्ति कराने का है।
९३. गुरूभक्तियोग मनुष्य को दुःख, जरा और व्याधि से मुक्त करता है, उसे चिरायु बनाता है, शाश्वत सुख प्रदान करता है।
९४. गुरूभक्तियोग में शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक- हर प्रकार के अनुशासन का समावेश हो जाता है। इससे मनुष्य आत्पप्रभुत्व पा सकता है एवं आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।
९५. गुरूभक्तियोग मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए विज्ञान एवं कला है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरण–२– गुरू और शिष्य

गुरू की महत्ता

१. जो आँखें गुरू के चरणकमलों का सौन्दर्य नहीं देख सकतीं वे आँखें सचमुच अन्ध हैं।
२. जो कान गुरू की लीला की महिमा नहीं सुनते वे कान सचमुच बहरे हैं।
३. गुरू रहित जीवन मृत्यु के समान है।
४. गुरू कृपा की सम्पत्ति जैसा और कोई खजाना नहीं है।
५. भवसागर को पार करने के लिए गुरू के सत्संग जैसी और कोई सुरक्षित नौका नहीं है।
६. आध्यात्मिक गुरू जैसा और कोई मित्र नहीं है।
७. गुरू के चरणकमल जैसा और कोई आश्रय नहीं है।
८. सदैव गुरू की रट लगाओ।

गुरू के प्रति भक्तिभावना

९. श्रद्धा, भक्ति और तत्परता के फूलों से गुरू की पूजा करो।
१०. आत्म–साक्षात्कार के मन्दिर में गुरू का सत्संग प्रथम स्तम्भ है।
११. ईश्वरकृपा गुरू का स्वरूप धारण करती है।
१२. गुरू के दर्शन करना ईश्वर के दर्शन करने के बराबर है।
१३. जिसने सदगुरू के दर्शन नहीं किये वह मनुष्य अन्धा ही है।
१४. धर्म केवल एक ही है और वह है गुरू के प्रति भक्ति एवं प्रेम का धर्म।
१५. जब आपको दुनयावी अपेक्षा नहीं रहती तब गुरू के प्रति भक्तिभाव जागता है।
१६. आत्मवेत्ता गुरू के संग के प्रभाव से आपका जीवनसंग्राम सरल बन जायेगा।
१७. गुरू का आश्रय लो और सत्य का अनुसरण करो।
१८. अपने गुरू की कृपा में श्रद्धा रखो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो।
१९. गुरू की आज्ञा का अतिक्रमण माने खुद ही अपनी कब्र खोदने के बराबर है।
२०. सदगुरू शिष्य पर सतत आशीर्वाद बरसाते हैं। आत्मसाक्षात्कारी गुरू जगदगुरू हैं, परम गुरू हैं।
२१. जगदगुरू का हृदय सौन्दर्य का धाम है।

गुरू की सेवा

२२. जीवन का ध्येय गुरू की सेवा करने का बनाओ।
२३. जीवन का हरएक कटु अनुभव गुरू के प्रति आपकी श्रद्धा की कसौटी है।
२४. शिष्य कार्य की गिनती करता है जबकि गुरू उसके पीछे निहित हेतु और इरादे की तुलना करते हैं।
२५. गुरू के कार्य को सन्देहपूर्वक देखना सबसे बड़ा पाप है।
२६. गुरू के समक्ष अपना दम्भपूर्ण दिखावा करने की कभी कोशिश मत करना।
२७. शिष्य के लिए तो गुरूआज्ञापालन जीवन का कानून है।
२८. आपके दिव्य गुरू की सेवा करने का कोई भी मौका चुकना नहीं।

२९. जब आप अपने दिव्य गुरू की सेवा करो तब एकनिष्ठ और वफादार रहना।
३०. गुरू पर प्रेम रखना, आज्ञापालन करना यानी गुरू की सेवा करना।
३१. गुरू की आज्ञा का पालन करना उनके सम्मान करने से भी बढ़कर है।
३२. गुरू आज्ञा का पालन त्याग से भी बढ़कर है।
३३. हर किसी परिस्थिति में अपने गुरू को तमाम प्रकार से अनुकूल हो जाओ।
३४. अपने गुरू की उपस्थिति में अधिक बातचीत मत करो।
३५. गुरू के प्रति शुद्ध प्रेम यह गुरू आज्ञापालन का सच्चा स्वरूप है।
३६. अपनी उत्तमोत्तम वस्तु प्रथम अपने गुरू को समर्पित करो। इससे आसक्ति सहज में मिटेगी।
३७. शिष्य ईर्ष्या, डाह एवं अभिमान रहित, निःस्पृह और गुरू के प्रति दृढ़ भक्तिभाववाला होना चाहिए। वह धैर्यवान और सत्य को जानने के लिए निश्चयवाला होना चाहिए।
३८. शिष्य को अपने गुरू के दोष नहीं देखना चाहिए।
३९. शिष्य को गुरू के समक्ष अनावश्यक एवं अयोग्य प्रलाप नहीं करना चाहिए।
४०. गुरू के द्वारा जो सदज्ञान प्राप्त होता है वह माया अथवा अध्यास का नाश करता है।
४१. एक ही ईश्वर अनेक रूप में माया के कारण दिखता है ऐसा जिसको गुरूकृपा से ज्ञान होता है वह सत्य को जानता है और वेदों को समझता है।
४२. गुरूसेवा और पूजा के द्वारा प्राप्त निरन्तर भक्ति से तीक्ष्ण धार वाले ज्ञान के कुल्हाड़े से तू धीरे–धीरे, पर दृढ़तापूर्वक इस संसार रूपी वृक्ष को काट दे।
४३. गुरू जीवन–नौका के कर्णधार और ईश्वर उस नौका को चलाने वाला अनुकूल पवन है।
४४. जब मनुष्य को संसार के प्रति घृणा उपजती है, उसे वैराग्य आता है और गुरू के दिये हुए उपदेश का चिन्तन करने के लिए शक्तिमान होता है तब ध्यान में बार–बार अभ्यासके कारण उसके मन की अनिष्ट प्रकृति दूर होती है।
४५. गुरू से भली प्रकार जान लिया जाय तभी मंत्र के द्वारा शुद्धि पैदा होती है।

शिष्यवृत्ति के सिद्धान्त

४६. मनुष्य अनादि काल से अज्ञान के प्रभाव में होने के कारण गुरू के बिना उसे आत्म–साक्षात्कार नहीं हो सकता। जो ब्रह्म को जानता है वही दूसरे को ब्रह्मज्ञान दे सकता है।
४७. सयाने मनुष्य को चाहिए कि वह अपने गुरू को आत्मा–परमात्मारूप जानकर अविरत भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा करे अर्थात् उनके साथ तदाकार बने।
४८. शिष्य को गुरू एवं ईश्वर के प्रति सन्निष्ठ भक्तिभाव होना चाहिए।
४९. शिष्य को आज्ञाकारी बनकर, सावधान मन से एवं निष्ठापूर्वक गुरू की सेवा करनी चाहिए और उनसे भगवद् भक्त के कर्त्तव्य अथवा भगवद् धर्म जानना चाहिए।
५०. शिष्य को ईश्वर के रूप में गुरू की सेवा करना चाहिए। विश्व के नाथ को प्रसन्न करने का एवं उनकी कृपा के योग्य बनने का सुनिश्चित उपाय है।
५१. शिष्य को वैराग्य का अभ्यास करना चाहिए और अपने आध्यात्मिक गुरू का सत्संग करना चाहिए।
५२. शिष्य को प्रथम तो अपने गुरू की कृपा प्राप्त करना चाहिए और उनके बताये हुए मार्ग में चलना चाहिए।

५३. शिष्य को अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर गुरू के आश्रय में रहना चाहिए..... सेवा, साधना एवं शास्त्राभ्यास करना चाहिए।
५४. शिष्य को गुरू के द्वार से जो कुछ अच्छा या बुरा, कम या ज्यादा, सादा या स्वादु खाना मिले वह गुरूभाई को अनुकूल होकर खाना चाहिए।

गुरू का ध्यान

५५. गुरू के चरणकमलों का ध्यान करना यह मोक्ष एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है।
५६. जो मनुष्य गुरू के चरणकमलों का ध्यान नहीं करते वे आत्मा का घात करने वाले हैं। वे सचमुच जिन्दे शव के समान कंगले मवाली हैं। वे अति दरिद्र लोग हैं। ऐसे निगुरे लोग बाहर से धनवान दिखते हुए भी आध्यात्मिक जगत में अत्यंत दरिद्र हैं।
५७. सयाने सज्जन अपने गुरू के चरणकमल के निरन्तर ध्यान रूपी रसपान से अपने जीवन को रसमय बनाते है और गुरू के ज्ञान रूपी तलवार को साथ में रखकर मोहमाया के बन्धनों को काट डालते हैं।
५८. गुरू के चरणकमल का ध्यान करना यह शाश्वत सुख के द्वार खोलने के लिए अमोघ चाबी है।
५९. गुरू का ध्यान करना यह आखिरी सत्य की प्राप्ति का केवल एक ही सच्चा राजमार्ग है।
६०. गुरू का ध्यान करने से सब दुःख, दर्द एवं शोक का नाश होता है।
६१. गुरू का ध्यान करने से शोक व दुःख के तमाम कारण नष्ट हो जाते हैं।
६२. गुरू का ध्यान आपके इष्ट देवता के दर्शन कराता है, गुरूत्व में स्थिति कराता है।
६३. गुरू का ध्यान एक प्रकार का वायुयान है, जिसकी सहायता से शिष्य शाश्वत सुख, चिरंतन शान्ति एवं अखूट आनन्द के उच्च लोक में उड़ सकता है।
६४. गुरू का ध्यान दिव्यता की प्राप्ति के लिए राजमार्ग है, जो शिष्य को दिव्य जीवन के ध्येय तक सीधा ले जाता है।
६५. गुरू का ध्यान एक रहस्यमय सीढी है, जो शिष्य को पृथ्वी पर से स्वर्ग में ले जाती है।
६६. गुरू के चरणकमल का ध्यान किये बिना शिष्य के लिए आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।
६७. गुरू का नियमित ध्यान करने से आत्मज्ञान के प्रदेश खुल जाते हैं, मन शांत, स्वस्थ एवं स्थिर बनता है और अन्तरात्मा जागृत होती है।

सुख की विजय

६८. शिष्य जब गुरू के चरणकमल का ध्यान करता है तब सब संशय अपने आप नष्ट हो जाते हैं।
६९. शिष्य जब गुरू की सुरक्षा में होता है तब कोई भी वस्तु उसके मन को क्षुभित नहीं कर सकती।
७०. आप अगर अपने मन को बाह्य पदार्थों में से खींचकर सतत ध्यान के द्वारा गुरू के चरणकमल में लगाओगे तो आपके तमाम दुःख नष्ट हो जाएँगे।
७१. गुरू का ध्यान करना यह तमाम मानवीय दुःखों का नाश करने का एकमात्र उपाय है।
७२. जो शिष्य अपने गुरू के चरणकमल में अपना चित्त नहीं लगा सकता उसे आत्मज्ञान नहीं मिल सकता।
७३. जो शिष्य गुरू का ध्यान बिल्कुल नहीं करता उसे मन की शान्ति नहीं मिल सकती।

७४. अगर आपको इस संसार के दुःख एवं दर्द दूर करने हों तो आपको आत्म–साक्षात्कारी गुरू का ध्यान करने की आदत डालना चाहिए। ठीक ही कहा हैः

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

गुरूकृपा की आवश्यकता

७५. गुरू की सहाय के बिना कोई आत्मज्ञान पा नहीं सकता।
७६. गुरूकृपा के बिना दिव्य जीवन में कोई प्रगति नहीं कर सकता।
७७. गुरूकृपा के बिना आप मानसिक विकारों से मुक्त नहीं हो सकते एवं मोक्ष नहीं पा सकते।
७८. अगर आप अपने गुरू की मूर्ति का ध्यान करने की आदत नहीं डालोगे तो आत्मा का भव्य वैभव एवं सनातन ज्योति आपसे सदा के लिए अदृश्य रहेगी।
७९. गुरू के स्वरूप का नियमित एवं व्यवस्थित ध्यान करने की आदत डालकर आत्मा को ढांकने वाले आवरण को चीर डालो।
८०. गुरू के स्वरूप का ध्यान करना यह तमाम रोगों के लिए शक्तिशाली औषध है।
८१. गुरू का ध्यान करने से अन्तरात्मा के ज्ञान के एवं अन्य कई गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए मन के द्वार खुल जाते है।
८२. गुरू का ध्यान करने से जीवन के तमाम दुःख दूर हो जाते हैं।

शान्ति और शक्ति का मार्ग

८३. गुरू के स्वरूप का ध्यान करो, तभी आपको सच्ची शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी।
८४. आध्यात्मिक गुरू का ध्यान करने से बहुत ही आध्यात्मिक शक्ति, शान्ति, नया जोश और नया बल मिलता है।
८५. पवित्र गुरू का ध्यान करने से शुद्ध शक्तिशाली विचारों का विकास होता है।
८६. गुरू के स्वरूप का नियमित चिन्तन करने से मन इधर उधर भटकना धीरे–धीरे बन्द कर देता है।
८७. गुरू के स्वरूप का ध्यान करने से आध्यात्मिक मार्ग में से तमाम अड़चनें दूर हो जाती हैं।
८८. गुरू का ध्यान करने से मन की उत्तेजना दूर होती है और मन की शान्ति में बहुत वृद्धि होती है।
८९. दिव्य गुरू के चरणकमलों का ध्यान करने के लिए ब्राह्ममुहूर्त सबसे ज्यादा अनुकूल समय है। चालू व्यवहार में भी कभी–कभी गुरू का ध्यान करके आप शक्ति, स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त करते रहो।
९०. आप ज्यों ही बिस्तर में जागो कि तुरन्त गुरूमंत्र का जाप करो। यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।
९१. एकान्त एवं गुरू के स्वरूप का गहरा चिन्तन....ये दो चीजें आत्म–साक्षात्कार के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं।

ध्यान के लिए प्राथमिक तैयारियाँ

९२. गुरू का ध्यान करने के लिए हरएक वस्तु को सात्त्विक बनाना चाहिए। स्थान, भोजन, वस्त्र, संग, पुस्तकें आदि सब सात्त्विक होना चाहिए।
९३. गुरू का ध्यान करना किसी भी परिस्थिति में छोड़ना नहीं चाहिए।

९४. केवल सदाचारी जीवन जीना ही ईश्वर–साक्षात्कार के लिए पर्याप्त नहीं है, गुरू का निरन्तर एवं गहरा ध्यान करना अनिवार्य है।
९५. अगर आपको संसार के दुःख दर्द एवं जन्म–मृत्यु की मुसीबतों से सदा के लिए मुक्त होना हो तो आपको गुरू के स्वरूप का गहरा ध्यान करने की आदत डालना चाहिए।
९६. गुरू का ध्यान करना यह अनन्य अनुभव या सीधे आत्मज्ञान के लिए राजमार्ग है।
९७. अन्न, वस्त्र, निवास आदि शारीरिक आवश्यकताओं के लिए शिष्य को चिन्ता नहीं करना चाहिए। गुरूकृपा से उसके लिये सब चीजों का इन्तजाम हो जाता है।
९८. गुरू का ध्यान शिष्य के लिए एकमात्र मूल्यवान पूँजी है।
९९. भक्तों के लिए भगवान हमेशा गुरू के रूप में पथप्रदर्शक बनते हैं।
१००. मनुष्य को गुरू की सेवा करना चाहिए और गुरू जो–जो आज्ञा करें उन सबका पालन करना चाहिए। इसमें उसे बिल्कुल लापरवाही या बड़बड़ नहीं करना चाहिए। अपनी बुद्धि का भी उपयोग नहीं करना चाहिए।
१०१. गुरू जब कोई भी चीज करने की आज्ञा करें तब शिष्य को हृदयपूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।
१०२. गुरू के प्रति इस प्रकार की आज्ञाकारिता आवश्यक है। यह निष्काम कर्म की भावना है। इस प्रकार का कर्म किसी भी फल की आशा के लिए नहीं किया जाता अपितु गुरू की पवित्र आज्ञा के लिए ही किया जाता है। तभी मन की अशुद्धियाँ, जैसे कि काम, क्रोध और लोभ नष्ट होते हैं।
१०३. जो शिष्य चार प्रकार के साधनों से सज्जग है वही ईश्वर से अभिन्न ब्रह्मनिष्ठ गुरू के समक्ष बैठने के एवं उनसे महावाक्य सुनने के लिए लायक है।

चार प्रकार के साधन यानी साधनचतुष्टय इस प्रकार हैं–

विवेक = आत्मा–अनात्मा, नित्य–अनित्य, कर्म–अकर्म आदि का भेद समझने की शक्ति।

वैराग्य = इन्द्रियजन्य सुख और सांसारिक विषयों से विरक्ति।

षट्संपत्ति = शम (वासनाओं एवं कामनाओं से मुक्त निर्मल मन की शान्ति), दम (इन्द्रियों पर काबू), उपरति (विषय–विकारी जीवन से उपरामता), तितिक्षा = (हरेक स्थिति में स्थिरता एवं धैर्य के साथ सहनशक्ति), श्रद्धा और समाधान (बाह्य आकर्षणों से अलिप्त मन की एकाग्र स्थिति)।

मुमुक्षत्व = मोक्ष अथवा आत्म–साक्षात्कार के लिए तीव्र आकांक्षा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ३ – गुरूभक्ति का विकास

पवित्रता ही पूर्वतैयारी

१. जिसके मन से तमाम अशुद्धियाँ दूर की गई हों ऐसे शिष्य को ही गुरू के गूढ़ रहस्यों की दीक्षा दी जाय तो उसका मन सम्पूर्ण स्थिरता प्राप्त कर सकेगा और वह निर्विकल्प समाधि की अवस्था में प्रविष्ट हो सकेगा।
२. जो सिद्ध आत्मयोगी हों ऐसे गुरू की निगरानी के नीचे योग सीखो।
३. विषयविकार के रंगे हुए आपके मन को एकाग्रता, गुरू के उपदेश एवं उपनिषदों के वाक्यों के मनन, ध्यान एवं जप से पवित्र बनाना होगा।
४. आपको मार्गदर्शन देने के लिए आत्म–साक्षात्कारी सदगुरू होने चाहिए।
५. एक ही स्थान, एक ही आध्यात्मिक गुरू और एक ही योग पद्धति में लगे रहो। यही निश्चित सफलता की रीति है।

योग की साधना

६. गुरू अथवा सिद्ध योगी की निगरानी में ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
७. आप अपने गुरू के अथवा किसी भी संत के चित्र पर एकाग्रता कर सकते हैं।
८. विषयों से मन को वापस खींच लो और अपने गुरू के उपदेश के मुताबिक आगे बढ़ो।
९. कश्मीर में स्थित साधक (शिष्य) भी अगर हिमालय के उत्तरकाशी में स्थित अपने गुरू का, अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक का ध्यान करे तो भी गुरू एवं शिष्य के बीच एक निश्चित गहरा सम्बन्ध स्थापित होता है। शिष्य के विचारों के प्रत्युत्तर में गुरू शक्ति, शान्ति, आनन्द, सुख के स्पन्दन प्रसारित करते हैं। शिष्य लोहचुम्बक के प्रचण्ड प्रवाह में स्नान करता है। जिस प्रकार एक बर्तन से दूसरे बर्तन में तेल बहता है उसी प्रकार गुरू और शिष्य के बीच आध्यात्मिक विद्युत शक्ति का झरना धीरे–धीरे निरन्तर बहता है।शिष्य अपनी श्रद्धा के मुताबिक गुरू से शक्ति प्राप्त करता है। जहाँ–जहाँ शिष्य सच्चे हृदय से अपने गुरू का ध्यान करता है वहाँ गुरू को भी मालूम पड़ता है कि अपने शिष्य की ओर से प्रार्थना या उन्नत विचारधारा का प्रवाह बहता है और अपने हृदय को स्पर्श करता है। जिनके पास आंतरचक्षु होते हैं वे गुरू–शिष्य के बीच हल्का सा उज्जवल प्रकाश स्पष्टतः देख सकते हैं। चित्तरूपी सागर में सात्विक विचारों के स्पन्दन से गति पैदा होती है।

गुरू का स्पर्श

१०. आध्यात्मिक गुरू अपनी आध्यात्मिक शक्ति अपने शिष्य को प्रदान करते हैं। सदगुरू के अमूल्य स्पन्दन शिष्य के मन की ओर भेजे जाते हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति विवेकानन्द को दी थी। यह गुरू का दैवी स्पर्श कहा जाता है। समर्थ रामदास स्वामी के शिष्य ने अपनी ऐसी शक्ति नर्तकी की पुत्री को दी थी जो उसके प्रति अत्यंत कामुक थी। शिष्य ने उसकी ओर दृष्टिपात किया और उसे समाधि प्राप्त कराई। उसकी कामुकता नष्ट हो गई। तब से

वह बहुत धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्वभाववाली बन गई। मुकुन्दबाई नामक महाराष्ट्र की एक साध्वी ने बादशाह को समाधि प्रदान की थी।

११. आप जप और ध्यान शुरू करें उससे पहले कुछ दैवी स्तोत्र या मंत्रों का अथवा गुरूस्तोत्र का उच्चारण करो। अथवा बारह दफा ॐ का मंत्रोच्चार करो अथवा पाँच मिनट तक कीर्तन करो।
१२. मन को एक स्थान में, एक साधना में, एक गुरू में और एक ही योगमार्ग में लगाकर उसकी चंचल वृत्ति को वश में करना चाहिए।
१३. 'योगवाशिष्ठ' में गुरू वशिष्ठ जी कहते हैं – "हे राम! पाव भाग का मन प्रारंभिक ध्यान में लगाओ, पाव भाग का खेलकूद में, पाव भाग का अभ्यास में और पाव भाग का मन गुरूसेवा में लगाओ।"
१४. ईश्वर ने आपको तमाम प्रकार की सुविधाएँ, अच्छा स्वास्थ्य एवं मार्ग दिखाने के लिए गुरू दिये हैं। इससे अधिक और क्या चाहिए? अतः विकास करो, उत्क्रान्त बनो, सत्य का साक्षात्कार करो और सर्वत्र उसका प्रचार करो।
१५. गुरू एवं शास्त्र आपको मार्ग दिखा सकते हैं और आपके संशय दूर कर सकते हैं। अपरोक्ष का अनुभव (सीधा आंतरज्ञान) करना आप पर निर्भर रखा गया है। भूखे व्यक्ति को स्वयं ही खाना चाहिए। जिसको सख्त खुजली आती हो उसे खुद ही खुजलाना चाहिए।

मन को संयम में रखने की रीति

१६. मन के साथ कभी मुठभेड़ मत करो। एकाग्रताके लिए जलद प्रयासों का उपयोग मत करो। सब स्नायु और नस नाड़ियों को शिथिल करो। मस्तिष्क को ढीला छोड़ दो। धीरे–धीरे अपने गुरूमंत्र का उच्चारण करो। खदबदाते हुए मन को स्वस्थ करो। विचारों को शान्त करो।
१७. यदि मन में 'अहं' के सब संकल्प हों तो गुरू से दीक्षा लेने के बाद आत्मा का ध्यान करके एवं वेद का सच्चा रहस्य जानकर मन को विभिन्न दुःखों से वापस खींच सकते हैं और सुखदायक आत्मा में पुनः स्थापित कर सकते हैं।
१८. कुछ वर्ष तक अपने गुरू की प्रत्यक्ष निगरानी में और उनके सीधे एवं निकट के सम्पर्क में रहो। आप धीरे और नियमित प्रगति कर सकेंगे।
१९. चंचल मन एक साधना से दूसरी साधना की ओर, एक गुरू से दूसरे गुरू की ओर, भक्तियोग से वेदान्त की ओर एवं हृषिकेश से वृन्दावन की ओर कूदता है। साधना के लिए यह अत्यन्त हानिकर्त्ता है। एक ही गुरू से, एक ही स्थान से लगे रहो।
२०. आपके लिए किस प्रकार का योगमार्ग योग्य है यह आपको ही खोज लेना होगा। आप अगर यह नहीं कर सको तो जिन्होंने आत्म–साक्षात्कार किया हो ऐसे गुरू या आचार्य की सलाह आपको लेनी होगी। वे आपके मन की प्रकृति जानकर आपको उचित योग की पद्धति बतायेंगे।
२१. आध्यात्मिक गुरू का सत्संग और अच्छा माहौल मन की उन्नति में प्रचण्ड प्रभाव डालता है। यदि अच्छा सत्संग न मिल सके तो जिन्होंने आत्म–साक्षात्कार किया हो ऐसे महापुरूषों के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए। उदाहरणार्थः श्री शंकराचार्य के ग्रन्थ, योगवाशिष्ठ, श्री दत्तात्रेय की अवधूत गीता इत्यादि।

आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति

२२. आपके हृदय की गुह्य बातें आपके गुरू के समक्ष खुल्ली कर दो। इस प्रकार जितना अधिक करोगे उतनी अधिक सहानुभूति आपको मिलेगी। इससे आपको पाप एवं प्रलोभनों के साथ लड़ने में शक्ति प्राप्त होगी।

२३. मित्र पसंद करने में ध्यान रखें। अनिच्छनीय लोग आपकी श्रद्धा एवं मान्यताओं को सरलता से चलित कर देंगे। अपनी शुरू की हुई साधना में एवं अपने गुरू में सम्पूर्ण श्रद्धा रखें। अपनी मान्यताओं को कदापि चलित मत होने दें। अपनी साधना उमंग और उत्साह के साथ चालू रखें। आप त्वरित आध्यात्मिक प्रगति कर सकेंगे। आध्यात्मिक सीढी के सोपान एक के बाद एक चढ़ते जाएँगे और आखिर अपने ध्येय को हासिल कर लेंगे।

२४. पक्षी, मछली और कछुए की तरह स्पर्श, दृष्टि एवं इच्छा या विचारों के द्वारा गुरू अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का प्रसारण कर सकते हैं। कभी कभी गुरू शिष्य के भौतिक शरीर में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से शिष्य के मन को उन्नत बना सकते हैं।

२५. कभी कभी आध्यात्मिक गुरू को बाह्यतः अपना क्रोध दिखाना पड़ता है किन्तु वह शिष्य की गलतियाँ दिखाने के लिए ही होता है। यह बात खराब नहीं है।

२६. कुछ लोग कुछ वर्ष तक स्वतंत्र रीति से ध्यान करते हैं किन्तु बाद में उनको गुरू की आवश्यकता महसूस होती है। उनको साधना के मार्ग में अवरोध आते हैं। इन अवरोधों और भयस्थानों को कैसे हटाये जायें यह वे नहीं जानते। तब वे गुरू की खोज करने लगते हैं। छः सात बार आने जाने के बाद भी किसी बड़े शहर में किसी अनजान आदमी को छोटी गली में स्थित अपने निवास स्थान में वापस आने में दिन के समय में भी तकलीफ महसूस होती है। सड़कों और मुहल्लों में मार्ग खोजने में भी तकलीफ होती है तो बन्द आँख से अकेले चलने वाले साधक को उस्तरे की धार जैसे आध्यात्मिकता के मार्ग में आने वाले विघ्नों की तो बात ही क्या ?

परिवर्तन

२७. मन के प्राकृत स्वभाव का सम्पूर्णतः नवसर्जन करना ही चाहिए। साधक अपने गुरू से कहता हैः "मुझे योग का अभ्यास करना है। निर्विकल्प समाधि में प्रविष्ट होने की मेरी आकांक्षा है। मैं आपके चरणों में बैठना चाहता हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ।" किन्तु वह अपने प्राकृत स्वभाव को, आदतों को, चारित्र्य को, वर्तन को, चालढाल को बदलना नहीं चाहता।

२८. प्राकृत स्वभाव में ऐसा परिवर्तन करना सरल नहीं है। संस्कारों की शक्ति दृढ़ और बलवान होती है। उनके परिवर्तन के लिए काफी मनोबल की आवश्यकता होती है। पुराने संस्कारों की शक्ति के आगे साधक कई बार निरूपाय हो जाता है। उसे नियमित जप, कीर्तन, ध्यान, अथक निःस्वार्थ सेवा और सत्संग से अपने सत्त्व और संकल्प का असीम विकास करना पड़ेगा। उसे अन्तर्मुख होकर अपनी कमियाँ और दुर्बलताएँ खोज लेनी पड़ेगी। उसे गुरू के मार्गदर्शन में रहना होगा। गुरू उसकी गलतियाँ खोज निकालते हैं और उन्हें दूर करने के लिए योग्य रीति बताते हैं।

२९. आपको मोक्ष के चार साधनों के लिए तैयारी करके ब्रह्मनिष्ठ एवं ब्रह्मश्रोत्रिय गुरू के पास जाना चाहिए। आपको अपने सन्देह दूर करना चाहिए। अपने गुरू से प्राप्त किये हुए आध्यात्मिक प्रकाश की सहायता से आध्यात्मिक मार्ग में चलना चाहिए। आपका ठीक प्रकार जीवन–निर्माण

हो जाय तब तक अहं और संसार का आकर्षण छोड़कर आपको गुरू के द्वार पर रहना चाहिए। ठीक ही कहा है किः 'सम्राट के साथ राज्य करना भी बुरा है.... न जाने कब रूला दे ! गुरू के साथ भीख माँगकर रहना भी अच्छा है.... न जाने कब मिला दे !' आत्म–साक्षात्कार सिद्ध किये हुए पुरुष का व्यक्तिगत सम्पर्क बहुत उन्नति कारक होता है। यदि आप सन्निष्ठ एवं उत्सुक होंगे, यदि आपको मोक्ष के लिए तीव्र आकांक्षा होगी, यदि आप अपने गुरू की सूचनाओं का चुस्तता से पालन करेंगे, यदि आप अखण्ड और निरन्तर योग करेंगे तो आप छः महीने में सर्वोच्च लक्ष्य सिद्ध कर सकेंगे। ऐसा ही होगा, यह मेरा वचन है।

३०. जगत प्रलोभनों से भरपूर है। अतः नये साधकों को ध्यानपूर्वक उनसे बचने की आवश्यकता है। जब तक उनकी घड़ाई पूर्ण न हो जाय, तब तक उन्हें गुरू के चरणकमलों में बैठना चाहिए। जो मनमुख साधक प्रारंभ से ही स्वच्छन्दी बनकर बर्ताव करते है, अपने गुरू के वचनों पर ध्यान नहीं देते वे बिल्कुल निष्फल हो जाते हैं। वे लक्ष्यहीन जीवन बिताते हैं। और नदी में तैरते हुए लकड़े की भाँति इधर–उधर टकराते हैं।

गुरू के प्रति आध्यात्मिक अभिगम

३१. 'हे पूज्य गुरूदेव ! हे मेरे अविद्या के विदारक ! आपको मेरे नमस्कार ! आपकी कृपा से मैं ब्रह्म का शाश्वत सुख भोगता हूँ। अब मैं पूर्णतः निर्भय बन चुका हूँ। मेरे सब संशय और भ्रम नष्ट हो गये हैं।'

३२. उपरोक्त मंत्र में शिष्य अपने अन्तरात्मा के अनुभव गुरू के समक्ष व्यक्त करता है। शिष्य अपने गुरू के चरणकमल में साष्टांग प्रणाम करता है। उन पर श्रेष्ठ फूलों की वर्षा करके उनकी स्तुति करता है। "हे पूज्य, पवित्र गुरू ! मुझे सर्वोच्च सुख प्राप्त हुआ है। मैं ब्रह्मनिष्ठा से जन्म–मृत्यु की परम्परा से मुक्त हुआ हूँ। मैं निर्विकल्प समाधि का शुद्ध सुख भोग रहा हूँ। जगत के किसी भी कोने में मैं मुक्तता से विचरण कर सकता हूँ। सब पर मेरी सम दृष्टि है। मैंने प्राकृत मन का त्याग किया है। मैंने सब संकल्प एवं रूचि–अरूचि का त्याग किया है। अब मैं अखण्ड शान्ति का अनुभव करता हूँ। मेरे आनन्द के अतिरेक के कारण मैं पूर्ण अवस्था का वर्णन नहीं कर पाता। हे पूज्य गुरूदेव ! मैं अवाक् बन गया हूँ। इस दुस्तर भवसागर को पार करने में आपने मुझे सहाय की है।"

३३. "अब तक मुझे केवल मेरे शरीर में ही सम्पूर्ण विश्वास था। मैंने विभिन्न योनियों में असंख्य जन्म लिये। ऐसी सर्वोच्च निर्भय अवस्था मुझे कौन से पवित्र कर्मों के कारण प्राप्त हुई यह मैं नहीं जानता। सचमुच यह एक दुर्लभ भाग्य है। यह एक महान अदृष्ट लाभ है। अब मैं आनन्द से नाचता हूँ। मेरे सब दुःख नष्ट हो गये हैं। मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं। मेरे कार्य सम्पन्न हुए हैं। मैंने सब वांछित वस्तुएँ प्राप्त की हैं। मेरी इच्छा परिपूर्ण हुई है।"

३४. "आप मेरे सच्चे माता–पिता हो। मेरी वर्त्तमान स्थिति मैं दूसरों के समक्ष किस प्रकार प्रकट करूँ? सर्वत्र सुख और आनन्द का अनन्त सागर लहराता हुआ मुझे दिख रहा है। जिससे मेरे अन्तःचक्षु खुल गये वह महावाक्य 'तत्त्वमसि' है। उपनिषदों, वेदान्तसूत्रों एवं वेदान्तशास्त्रों का भी आभार ! जिन्होंने ब्रह्मनिष्ठ गुरू का एवं उपनिषदों के महावाक्यों का रूप धारण किया है ऐसे श्री व्यास जी को प्रणाम ! श्री शंकराचार्य जी को प्रणाम ! ब्रह्मविद् गुरूओं को प्रणाम ! भगवान शिव को प्रणाम ! भगवान नारायण को प्रणाम ! सांसारिक मनुष्य के सिर पर गुरू के चरणामृत का एक बिन्दू गिरे तो भी उसके सब दुःखों का नाश होता है। यदि एक ब्रह्मनिष्ठ पुरूष को वस्त्र

पहनाये जायें तथा भोजन कराया जाय तो सारे विश्व को वस्त्र पहनाने एवं भोजन करवाने के बराबर है, ''क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ पुरूष सचराचर विश्व में व्याप्त है।'' सबमें वे ही हैं। ॐ.....ॐ.....ॐ.....

दुराग्रही शिष्य

३५. दुराग्रही शिष्य अपनी पुरानी आदतों को चिपका रहता है। वह भगवान की या साकार गुरू की शरण में नहीं जाता।
३६. यदि शिष्य सचमुच अपने आपको सुधारना चाहता है तो उसे अपने आप के साथ निखालिस और गुरू के प्रति ईमानदार बनना चाहिए।
३७. जो आज्ञाकारी नहीं है, जो अनुशासन भंग करता है, जो गुरू के प्रति ईमानदार नहीं है, जो अपने गुरू के समक्ष अपना हृदय खोल नहीं सकता उसे गुरू की सहाय से लाभ नहीं हो सकता। वह अपने द्वारा ही सर्जित कीचड़ में फँसा रहता है। वह अध्यात्म-मार्ग में प्रगति नहीं कर सकता। कैसी दयाजनक स्थिति ! उसका भाग्य सचमुच अत्यंत शोचनीय है।
३८. शिष्य को भगवान अथवा गुरू के प्रति सम्पूर्ण, अखण्ड और संकोचरहित होकर आत्म-समर्पण करना चाहिए।
३९. गुरू तो केवल अपने शिष्य को, सत्य जानने की अथवा जिस रीति से उसकी आत्मा की शक्तियाँ खिल उठे वह रीति बता सकते हैं।

गुरू की आवश्यकता

४०. अध्यात्ममार्ग में हर एक साधक को गुरू की आवश्यकता पड़ती है।
४१. केवल गुरू ही वास्तविक जीवन का अर्थ एवं उसका रहस्य प्रकट कर सकते हैं तथा प्रभु के साक्षात्कार का मार्ग दिखा सकते हैं।
४२. केवल गुरू ही शिष्य को साधना का रहस्य बता सकते हैं।
४३. जिन्होंने प्रभु का साक्षात्कार किया है वे ही आदर्श गुरू हैं।
४४. ऐसे गुरू मन, वचन और कर्म से पवित्र हैं।
४५. ऐसे गुरू अपने मन एवं इन्द्रियों पर प्रभुत्व रखते हैं, वे सब शास्त्रों का रहस्य समझते हैं, वे सरल, दयालु, सत्यप्रिय एवं आत्मारामी होते हैं।
४६. शिष्य के हृदय के अंतस्तल में सुषुप्त दैवी शक्ति को गुरू जागृत कर सकते हैं।
४७. शिष्य ने अगर पूर्वजन्म में शुभ कर्म किये होंगे, वर्तमान जीवन में भी अगर वह शुभ कर्म करता होगा, अगर वह सन्निष्ठ हृदयवाला तथा ईश्वर-प्राप्ति की तड़पवाला होगा तो उसे सदगुरू अवश्य प्राप्त होंगे।
४८. गुरू से पूरा लाभ उठाने के लिए उनके प्रति शिष्य में दृढ़ श्रद्धा एवं सच्ची भक्ति होना चाहिए।
४९. शिष्य गुरू के प्रति जितनी मात्रा में भक्तिभाव होगा उतनी मात्रा में उसे फल की प्राप्ति होगी।
५०. केवल आध्यात्मिक गुरू ही मार्ग दिखाकर शिष्य को प्रभु से मिला सकते है।
५१. गुरू मनुष्य के रूप में साक्षात् ईश्वर ही हैं।

शिष्य के कर्त्तव्य

५२. शिष्य को गुरू की आज्ञा का पालन अन्तःकरणपूर्वक करना चाहिए।

५३. गुरू के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति कभी कभी शिष्य की रूचि को तत्काल अनुकूल न भी हो, फिर भी उसे श्रद्धा रखना चाहिए कि वह उसके हित के लिए ही है, लाभदायक ही है।

५४. गुरू मिलने से जो लाभ होते हैं और जो मानसिक शान्ति का अनुभव होता है वह असीम होता है।

५५. अपनी सर्वोच्च दिव्य प्रकृति का भान होते हुए भी भगवान श्रीकृष्ण ने अपने गुरू सांदीपनी की कैसी सेवा की और उनके पास अभ्यास किया यह तो आप जानते ही हैं।

५६. जिस शिष्य को अपने गुरू में श्रद्धा होती है वह ज्ञान प्राप्त करता है।

५७. पूरे हृदय से संकोचरहित होकर सम्पूर्णतया अपने गुरू की शरण में जाओ।

५८. गुरू पृथ्वी पर साक्षात् ईश्वर हैं अतः उनकी पूजा करो।

५९. गुरूभक्ति एवं गुरूसेवा के फलस्वरूप आखिर आत्म–साक्षात्कार होता है।

६०. शिष्य को गुरू की सेवा करते रहना चाहिए। जब उसका आत्म–समर्पण पूर्णतः हो जायगा तब गुरू उसे सत्य का स्पष्ट दर्शन कराएँगे।

६१. कुछ भ्रांत शिष्य कुछ समय के लिए अपने गुरू की सेवा करते हैं। फिर मैंने चित्तशुद्धि प्राप्त की है ऐसी मूर्ख कल्पना करके गुरू की सेवा छोड़ देते हैं। उनको सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त नहीं होता। उनको ध्येयसिद्धि नहीं होती।

६२. उनको थोड़ा बहुत पुण्य अवश्य मिलता है लेकिन आत्म–साक्षात्कार नहीं होता। सचमुच, यह एक बड़ा नुकसान है। उनकी यह गंभीर भूल है।

गुरूभक्ति और गुरूसेवा

६३. गुरूभक्ति और गुरूसेवा साधना रूपी नौका की दो पतवारें हैं जो शिष्य को संसारसरिता के उस पार ले जाती हैं।

६४. जो गुरू की शरण में गया है, जो सच्चे मन से गुरू की सेवा करता है, जिसकी गुरूभक्ति अदभुत है उसे शोक, विषाद, भय, पीड़ा, दुःख या अज्ञान की असर नहीं होता। उसे तत्काल ईश्वर–साक्षात्कार होता है।

६५. प्रभु और गुरू एक ही हैं अतः गुरू की पूजा करो।

६६. जिन्होंने जानने योग्य जाना है, जिन्होंने प्राप्त करने योग्य प्राप्त किया है, जो मार्ग दिखाने के लिए समर्थ हैं ऐसे गुरू के चरणकमलों का आश्रय लेने वाले शिष्य को यों मानना चाहिए कि मैं तीन गुना कृतार्थ हुआ हूँ।

६७. स्वार्थ का त्याग करना अति कठिन है। यदि शिष्य स्वयं स्वार्थ को निर्मूल करने का दृढ़ निश्चय करे और सतत अभ्यास के द्वारा उसे पुष्ट करे तो गुरूकृपा से स्वार्थ विदा होता है।

६८. शिष्य अगर जितनी संभव हो सके उतनी व्यवहारू रीति से, तत्परता से एवं निश्चयपूर्वक गुरू के आदेशों का पालन करने का प्रयास करेगा तो उसे प्रभु का साक्षात्कार होगा।

६९. शिष्य में जो गुण होने चाहिए उन सबमें गुरू की आज्ञा का पालन सर्वश्रेष्ठ गुण है।

आज्ञापालन का मूल्य

७०. आज्ञापालन अमूल्य गुण है। क्योंकि अगर आप आज्ञापालन का गुण जीवन में लाने का प्रयास करेंगे तो मनमुखता और अहंभाव धीरे धीरे निर्मूल हो जायेंगे।

७१. गुरू की आज्ञा का सम्पूर्णतः पालन करने का कार्य कठिन है किन्तु अन्तःकरण से प्रयत्न किया जाय तो वह सरल हो जाता है। गुरू की आज्ञा का पालन विश्व की तमाम कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने का अमोघ शस्त्र है।

७२. हरएक सामान्य कार्य में बहुत ही परिश्रम की आवश्यकता होती है। अतः सामान्य कार्य में बहुत ही परिश्रम की आवश्यकता होती है। अतः अध्यात्म के मार्ग में मनुष्य को अपने आप पर किसी भी प्रकार का संयम रखने के लिए तैयार रहना चाहिए और गुरू के प्रति आज्ञापालन का भाव जगाना चाहिए।

७३. आन्तरिक भाव की अभिव्यक्ति के रूप में पूजा, पुष्पोपहार और भक्ति एवं पूजा के बाह्योपचार की अपेक्षा गुरू की आज्ञापालन का भाव अधिक महत्त्वपूर्ण है।

७४. समझो, किसी को ऐसा लगे कि अमुक प्रकार से आचरण करने से गुरू को अच्छा नहीं लगेगा, तो उसे ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए। यह भी आज्ञापालन ही है।

७५. यदि किसी भी मनुष्य के पास विश्व में अति मूल्यवान मानी जाय ऐसी सब चीजें कों लेकिन उसका मन अगर गुरू के चरणकमल में न लगा हो तो समझो उसके पास कुछ भी नहीं है।

७६. बेशक, सत्य अद्वैत है किन्तु द्वैत के विशाल अनुभव के द्वारा ही मनुष्य को आखिर अद्वैत की उच्चतम चेतना में पहुँचना है। वहाँ पहुँचने की प्रक्रिया में गुरू के चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव सबसे महत्त्वपूर्ण है। वह एक सर्वश्रेष्ठ साधना है।

७७. अपने आपको बार–बार गुरूभक्ति में स्थापित करने के लिए शिष्य को विभिन्न पद्धतियाँ काम में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

७८. हरेक गुरू जिस प्रकार शिष्य ग्रहण कर सके उसी प्रकार उपदेश का औषध देते हैं।

७९. गुरू के चरणकमलों से लगे रहो। उसमें साधना का रहस्य निहित है।

गुरू को अर्घ्य

८०. प्राचीन काल में शिष्य को हाथ में समिधा लेकर गुरू के पास जाना होता था। समिधा गुरू के चरणकमल को आत्मसमर्पण और शरणागति करने का प्रतीक है।

८१. "यह हमारे कर्मों की गठरी है। आप उसे जला दो।" शिष्य हाथ में समिध लेकर गुरू के पास जाता है। इसका यह अर्थ होता है। इसका बाह्य अर्थ ऐसा है कि ऋषि उस समय अग्निहोत्र करते थे। उनके यज्ञ के लिए काष्ठ लाने के रूप में गुरू की सेवा का यह प्रतीक है।

८२. आध्यात्मिक साक्षात्कार गुरू की परम सेवा का फल है।

८३. मनुस्मृति में कहा गया है कि शिष्यों को सदा वेदाध्ययन में निमग्न रहना चाहिए। परम श्रद्धा एवं भक्तिभावपूर्वक आचार्य की सेवा के दौरान शिष्य को मदिरा, मांस, तेल, इत्र, स्त्री, स्वादु भोजन, चेतन प्राणियों को हानि पहुँचाना, काम, क्रोध, लोभ, नृत्य, गान, क्रीड़ा, वाजिन्त्र बजाना, रंग, गपशप लगाना, निन्दा करना, अति निद्रा लेना आदि से अलिप्त रहना चाहिए। उसे असत्य नहीं बोलना चाहिए।

८४. गुण एवं ज्ञान के भण्डार समान गुरू की निगरानी में शिष्य को अपने चारित्र्य का योग्य निर्माण करना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ४ – गुरूभक्ति की शिक्षा

भक्ति के नियम

१. फल की आसक्ति रहित शुद्ध हृदय की गुरूभक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।
२. शोक एवं भय से मुक्ति हो ऐसे गुरू के चरणकमल के सान्निध्य में जाओ।
३. अपने दैवी गुरू के चरणकमलों में अपना हृदय रख दो।
४. अपने गुरूद्वार को, गुरूआश्रम को साफ करके सजाने के काम में अपने हाथ को काम में लगाओ।
५. गुरू शिष्य के बीच का सम्बन्ध बहुत ही पवित्र है।
६. जो गुरू की सेवा करता है वह सब गुणों को प्राप्त करता है।
७. अपनी आँखों का उपयोग अपने दिव्य गुरू की छवी (फोटो) को निहारने में करो।
८. अपने मस्तक का उपयोग सदगुरू के पावन चरणों में झुकाने के लिए करो।
९. हे मनुष्य ! गुरू के चरणकमलों का आश्रय ले। काम, आसक्ति, अभिमान आदि को त्याग दे, क्योंकि वे गुरूसेवा में मुख्य विघ्न हैं।
१०. कोई भी तृष्णा से रहित, भक्तिभावपूर्वक गुरू की भक्ति करो तो आपको उनकी कृपा प्राप्त होगी।
११. अपनी सम्पत्ति, अपने शुभ कर्म, अपना तप आदि अपने पावन गुरू को अर्पण कर दो। तदनन्तर ही उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए आपका हृदय शुद्ध होगा।
१२. गुरू एवं संतों के चरणों की धूलि से आपके हृदय को शुद्ध करो। तभी आपका हृदय पवित्र होगा, तभी आप भक्ति कर सकोगे।
१३. प्रेम एवं आदर से अपने गुरू एवं संतों की सेवा करो। उनका साक्षात् प्रभु मानो। तभी आप भक्ति कर सकोगे।

गुरूसेवा का योग

१४. 'गुरूसेवायोग' का अर्थ है गुरू की निःस्वार्थ सेवा।
१५. गुरू की सेवा माने मानव जाति की सेवा।
१६. गुरूसेवा से मन की अशुद्धि नष्ट होती है। गुरूसेवा हृदयशुद्धि के लिए एक बलवान चीज है। अतः भावनापूर्वक गुरू की सेवा करो।
१७. गुरू की सेवा दिव्य प्रकाश, ज्ञान और कृपा को ग्रहण करने के लिए मन को तैयार करती है।
१८. गुरूसेवा हृदय को विशाल बनाती है, सब विघ्नों को हटाती है। गुरूसेवा हृदयशुद्धि के लिए एक असरकारक साधना है।
१९. गुरू की सेवा मन को सदा प्रगतिशील और चपल रखती है।

२०. गुरू की सेवा के कारण दैवी गुण जैसे कि दया, नम्रता, आज्ञापालन, प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, धैर्य, आत्मत्याग आदि का विकास होता है।
२१. गुरूसेवा से ईर्ष्या, धिक्कार एवं दूसरों से बड़ा होने का भाव नष्ट होता है।
२२. जो गुरू की सेवा करता है वह अहंभाव और ममता को जीत सकता है।
२३. जो शिष्य गुरू की सेवा करता है वह सचमुच तो अपने आपकी ही सेवा करता है।
२४. गुरूसेवायोग के अभ्यास से अवर्णनीय आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है।
२५. शिष्य जब गुरू के घर रहता हो तब उसे संतोषी जीवन बिताना चाहिए। उसे पूर्णतः आत्मसंयम करना चाहिए।
२६. अपने गुरू के समक्ष शिष्य को धीरे से, मधुरता से एवं सत्य बोलना चाहिए। उसे कठोर एवं गलीच शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहिए। गुरू के द्वार पर रहकर, गुरू का अन्न खाकर गुरू के समक्ष झूठ बोलना अथवा गुरूभाइयों के साथ वैर रखना यह शिष्य के रूप में असुर होने का चिन्ह है। शिष्य के रूप में निहित ऐसा असुर गुरू–शिष्य परम्परा को कलंकित करता है। गुरू के हृदय को ठेस पहुँचे ऐसा आचरण करने वाला शिष्य अपना ही सत्यानाश करता है। जो गुरू का विरोध करता है वह सचमुच हतभागी है।

कबीरा निन्दक न मिलो पापी मिलो हजार।
एक निन्दक के माथे पर लाख पापीन को भार॥

गुरू की एवं गुरू के कार्य की निन्दा करने वाला निन्दक हजारों जन्मों तक मेंढक होकर पड़ा रहता है।

तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा हैः

हरिगुरू निन्दा सुनहिं जे काना। होवहिं पाप गौघात समाना॥
हरि गुरू निन्दक दादूर होवहिं। जन्म सहस्र नर पावहिं सो हि॥

गुरूभक्तों को, शिष्यों को एवं सतशिष्यों को चाहिए कि वे ऐसे आसुरी वृत्तिवाले, श्रद्धा डिगाने वाले अथवा अपने हल्के व्यवहार से गुरू के नाम को, गुरू के धाम को क्षति पहुँचाने वाले असुरों को सावधान कर दें एवं स्वयं भी उनसे सावधान रहें।

प्रसिद्ध गुरू के द्वार पर ऐसे आसुरी वृत्ति के लोग शिष्य के रूप में घुस जाते हैं। शिष्य तो उसे कहा जा सकता है जो अपना हलका स्वभाव छोड़ने के लिए तत्पर हो, गुरू के सिद्धान्त के मुताबिक चलने के लिए सतत सजग हो। गुरू को या गुरू के द्वार को लांछन लगे ऐसा आचरण कोई भी शिष्य कर ही नहीं सकता। अगर करता हुआ दिखे तो वह शिष्य के रूप में असुर है। सतशिष्यों को ऐसे कपटी शिष्य से सावधान रहना चाहिए।

२७. शिष्य को अपने गुरू की निन्दा नहीं करना चाहिए।
२८. जो गुरू की निन्दा करता है वह रौरव नर्क में गिरता है।
२९. जो खाने के लिए ही जीता है वह पापी है। जो गुरू की सेवा करने के लिए ही खाता है वह सच्चा शिष्य है।
३०. जो गुरू का ध्यान करता है उसे बहुत कम भोजन की आवश्यकता रह जाती है।

गुरू की कृपा

३१. केवल गुरू की कृपा से ही आप अपने मन को नियंत्रण में रख सकते हैं।
३२. आप गुरू की कृपा से ही समाधि या अतिचेतना में स्थित हो सकते हैं।

३३. विराग, अनासक्ति, इन्द्रिय–विषयक भोगविलासों के प्रति उदासीन हुए बिना किसी को गुरूकृपा नहीं पच सकती।
३४. मन के सहकार के सिवाय इन्द्रियों से कुछ नहीं हो सकता। मन को गुरूकृपा से वश में किया जा सकता है।
३५. शिष्य जब गुरू की निगरानी में रहता है तब उसका मन इन्द्रिय–विषयक भोगविलासों से विमुख बनने लगता है।
३६. गुरूओं एवं संतों के समागम से, धार्मिक ग्रंथों के अभ्यास के, सात्त्विक भोजन से, प्रभु के नाम आदि से सात्त्विक वृत्ति में वृद्धि होती है।
३७. राजसी प्रकृति का मनुष्य अपने पूरे हृदय से एवं अन्तःकरण से गुरू की सेवा नहीं कर सकता।
३८. प्राणायाम और गुरू के नाम का जप करने से मन अन्तर्मुख होता है।
३९. ब्रह्मश्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास शास्त्रों का अभ्यास करो, तभी आपको मोक्ष प्राप्त होगा।
४०. ब्रह्मचारी का मुख्य कर्त्तव्य अपने गुरू की सेवा करना है।

गुरू का ध्यान करना चाहिए

४१. प्रातःकाल में ४ से ६ के बीच गुरू के स्वरूप का ध्यान करो तो उनकी कृपा का अनुभव कर सकोगे।
४२. अपने गुरू को फोटो अपने सामने रखो। ध्यान के आसन में बैठो। धीरे–धीरे फोटो पर मन को एकाग्र करो। मन को उनके चरणकमल, हाथ, छाती, गले, सिर, मुख, आँखों आदि पर घुमाओ। आँख की पुतली न हिले इस प्रकार सतत पाँच मिनट तक निहारो। फिर आँखें बन्द करके उसी प्रकार भीतर फोटो को निहारने का प्रयास करो। इस क्रिया का पुनरावर्तन करो। फिर अच्छी तरह ध्यान कर सकोगे।
४३. गुरू के स्वरूप का ध्यान करो। ध्यान के दौरान आपको दिव्य आत्मिक आनन्द, रोमांच, शान्ति आदि का अनुभव होगा। कुण्डलिनी शक्ति जागृत होगी, हृदय भाव–विभोर होगा। रोमांच, शान्ति, आदि का अनुभव होगा। रोमांच, हृदय, रूदन आदि अष्टसात्त्विक भाव में आपका मन विचरण करने लगेगा। शिष्य को गुरूमुखता की यह निशानी है। फिर आपको साधना करनी नहीं पड़ेगी, साधना अपने आप होने लगेगी।
४४. सांसारिक लोगों का संग, अधिक खाना, अभिमानी एवं राजसी प्रकृति, निद्रा, काम, क्रोध, लोभ ? ये सब गुरूकृपा प्राप्त करने में विघ्न हैं।
४५. गुरू के स्वरूप का चिन्तन करने में निद्रा, मन की चंचलता, सुषुप्त इच्छाएँ जागना, हवाई किले बाँधना, आलस्य, रोग एवं आध्यात्मिक अभिमान विघ्न हैं।
४६. गुरू सब शुभ गुणों के धाम है।
४७. शिष्य के लिए गुरू जीवन का सर्वस्व हैं।
४८. गुरूभक्ति जन्म, मृत्यु एवं जरा को नष्ट करती है।
४९. गुरूभक्ति ईश्वरकृपा प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।

गुरूः एक महान पथप्रदर्शक

५०. जो आत्मज्ञान का मार्ग दिखाते हैं वे पृथ्वी पर के सच्चे देव हैं। गुरू के सिवाय यह मार्ग कौन दिखा सकता है ?

५१. गुरू प्रभुप्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं और शिष्य को सदा के लिए सुखी करते हैं।
५२. जो पूर्णता का मार्ग दिखाते हैं वे गुरू हैं।
५३. संस्कृत में 'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार या अज्ञान है और 'रू' का अर्थ दूर करने वाला है। अन्धकार या आवरणरूपी अज्ञान का नाश करने के कारण वे गुरू कहलाते हैं।
५४. आध्यात्मिक गुरू निरन्तर उपदेश से साधक को तालीम देते हैं।
५५. गुरू सच्चे शिष्य को प्रभु की ओर से प्राप्त भेंट हैं।
५६. तमाम शास्त्र जोर देकर गुरू की आवश्यकता मानते हैं।
५७. श्रीराम जैसे दैवी अवतार ने भी श्री वशिष्ठजी को अपना गुरू माना था और उनकी आज्ञाओं का पालन किया था।
५८. शिष्य दुनियावी दृष्टि से चाहे कितना भी महान हो, फिर भी गुरू की सहाय के बिना वह निर्वाणसुख का स्वाद नहीं चख सकता।
५९. गुरू के चरणकमल की धूलि में स्नान किये बिना केवल तपश्चर्या करने से या दान से या वेदों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।
६०. शिष्य को सदा अपने गुरू की मूर्ति का पूजन करना चाहिए और उनके पवित्र नाम का जप करना चाहिए।
६१. साधक को अपने गुरू का या किसी भी संतों का बुरा बोलना या चाहना नहीं चाहिए।
६२. साधक चाहे कितना भी महान हो फिर भी उसे गुरू के समक्ष फिजूल बातें नहीं करना चाहिए।
६३. गुरू पृथ्वी पर देवदूत हैं, नहीं नहीं, देव ही हैं।
६४. गुरू को शिष्य की सेवा या सहाय का आवश्यकता नहीं है किन्तु सेवा के द्वारा विकास करने के लिए वे शिष्य को एक मौका देते हैं।

महापुरूषों का मार्ग

६५. कितने भी महान होने के बजाय भी तमाम संतों, ऋषियों, पैगम्बरों, जगदगुरूओं, अवतारों एवं महापुरूषों के अपने गुरू थे।
६६. गुरू सब सदगुण एवं शुभ वस्तुओं की खान हैं।
६७. गुरू के सान्निध्य से सब संशय, भय, चिन्ता और दुःख का नाश होता है।
६८. गुरू में अचल श्रद्धा और गुरू के प्रति दृढ भक्तिभाव से शिष्य सब कार्यों में सिद्धि एवं भौतिक आबादी प्राप्त कर सकता है।
६९. भवसागर में डूबते हुए शिष्य के लिए गुरू जीवन संरक्षक नौका है।
७०. अगर आपको कोई भी कला सीखना हो तो उस कला के विशेषज्ञ गुरू के पास जाना चाहिए।
७१. साधारण प्रकार के भौतिक ज्ञान के बारे में अगर ऐसा हो तो आध्यात्मिक मार्ग में गुरू की आवश्यकता कितनी सारी होनी चाहिए ?
७२. गुरू की सहाय के बिना मन को संयम में लाने की कोशिश जो करते हैं वे ऐसे व्यापारी जैसे हैं जिनको अपने जहाज के लिए अच्छा संचालक नहीं मिला है।
७३. अध्यात्ममार्ग काँटोवाला और सीधी चढाई वाला मार्ग है। प्रलोभन आपके ऊपर हमला करेंगे। उसमें पतन की संभावना है। अतः ऐसे गुरू के पास जायें जो इस मार्ग के जानकार हों।
७४. गुरू का चिन्तन करने से सुख, भीतरी शक्ति, मन की शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होता है। गुरूचिन्तन से, गुरूचर्चा से उनके दैवी स्वभाव का संचार हमारे जीवन में होता है।

७५. गुरू की प्रशस्ति माने ईश्वर की प्रशस्ति।

गुरू से हमारा सम्बन्ध

७६. इस कलियुग में आत्म–साक्षात्कारी सदगुरू की भक्ति के द्वारा ही ईश्वर–साक्षात्कार करना है। सत्यस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए गुरू कलियुग में तारणहार हैं।
७७. गुरू से दीक्षा प्राप्त हो जाय, यह बड़े भाग्य की बात है।
७८. मंत्रचैतन्य याने मंत्र की गूढ़ शक्ति गुरू की दीक्षा के द्वारा ही जागृत होती है।
७९. आज से ही सम्पूर्ण भक्तिभावपूर्वक गुरू की सेवा करने का निश्चय करो।
८०. आध्यात्मिकता की खान के समान गुरू की सहाय के बिना आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।
८१. गुरू साधकों के आगे से माया का आवरण एवं अन्य विक्षेप दूर करते हैं और उनके मार्ग में प्रकाश करते हैं।
८२. माता को देव समान जानो, पिता को देव समान जानो, गुरू को देव समान जानो, अतिथि को देव समान जानो।
८३. गुरू की सेवा के बिना पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना यह समय का दुर्व्यय है।
८४. गुरूदक्षिणा दिये बिना गुरू के पास पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना यह समय का दुर्व्यय है।
८५. गुरू की इच्छाओं को परिपूर्ण किये बिना वेदान्त की पुस्तकों, उपनिषदों का एवं ब्रह्मसूत्रों का अभ्यास किया जाय तो उससे कल्याण नहीं होता, ज्ञान नहीं मिलता।
८६. लम्बे समय की गुरूसेवा के बाद आपका शुद्ध एवं शान्त मन आपका गुरू बनता है। जैसे पारस के संग से लोह सुवर्ण बनता है वैसे गुरू की चिरकाल पर्यन्त सेवा से आपमें भी गुरूत्व प्रकट होता है।

गुरूकृपा की अनिवार्यता

८७. चाहे कितने ही फिलासफी के ग्रंथ पढ़ो, सारे विश्व का प्रवास करके व्याख्यान करो, हजारों वर्ष तक हिमालय की गुफा में रहो, वर्षों तक प्राणायाम करो, जीवनपर्यन्त शीर्षासन करो फिर भी गुरू की कृपा के बिना आपको मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। रामायण में कहा हैः

गुरूबिन भवनिधि तरहिं न कोई। चाहे विरंचि शंकर सम होई॥

८८. आध्यात्मिक गुरू यह नहीं दिखा सकते कि ब्रह्म ऐसा है या वैसा है। प्रत्यक्ष अनुभव होने से पहले शिष्य समझ नहीं पाता कि ब्रह्म कैसा है। किन्तु गुरूकृपा शिष्य को अपनी हृदय गुहा में ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव गूढ़ रीति से करा सकती है।
८९. अपने माता, पिता एवं बुजुर्गों को मान दो।
९०. अगर गुरू इजाजत दें तो उनकी पैरचंपी करो।
९१. हर एक को अपने ज्ञान से, गुरू की सहाय से वेदान्त ग्रंथों का सच्चा रहस्य प्राप्त करके अपने भीतर ब्रह्म का अनुभव करना चाहिए।
९२. साधक को गुरू अथवा आध्यात्मिक पथदर्शक मिले हों फिर भी उसे अपने प्रयासों से ही सब तृष्णाओं, वासनाओं एवं अहंभाव का नाश करना चाहिए और आत्म–साक्षात्कार करना चाहिए।

गुरू कृपा से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता

९३. गुरू के चरणकमलों का आश्रय लेने से जो परम आनन्द का अनुभव होता है उसकी तुलना में तीनों लोकों का सुख भी नहीं आ सकता।

९४. अपने गुरू के साथ कभी लड़ो मत। उनको कभी कोर्ट में मत ले जाओ।

९५. गुरू की आज्ञा का उल्लंघन करने से सीधे नरक में पहुँचते हैं। गुरूद्रोही खुद तो डूबता है, अपने कुल को भी कलंकित करता है।

संत सताये तीनों जायी तेज बल और वंश।
एड़ा एड़ा केई गया रावण कौरव केरो कंस॥

८८. पातकी एवं स्वार्थी लोग सदगुरू के लिए चाहे कैसी भी अफवाहें फैलायें फिर भी सुज्ञ समाज एवं शिष्यगण सदगुरू के पावन सान्निध्य और उनकी मधुर याद से अपना हृदय पावन रखते हैं।

९६. गुरू एवं ज्ञानी पुरूषों का सान्निध्य मनुष्य–जीवन में कभी–कभी ही मिल सके ऐसा दुर्लभ मौका है।

९७. किसी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति, विशेषतः आत्मा विषयक मूल्यवान ज्ञान की प्राप्ति गुरू से ही हो सकती है।

९८. गुरू की परोपकारी कृपा शिष्य के लिए सर्वस्व है। आत्मज्ञान के द्वार खोलने वाली गुरू की कृपा ही है।

९९. आत्मसमर्पण का अर्थ है अपने आपको सम्पूर्णतः गुरू के शरण में छोड़ देना।

१००. तृष्णा एवं अहंभाव आत्मसमर्पण में कदम कदम पर विघ्नरूप बनते हैं।

१०१. भगवान श्रीकृष्ण ने अपने गुरू सांदीपनी के चरणों का सेवन किया था। उन्होंने अपने गुरू की सेवा की थी। वे अपने गुरू के लिए लकड़ियाँ लाते थे। भगवान श्रीराम के गुरू वशिष्ठजी थे जिन्होंने उनको उपदेश दिया। देवों के गुरू बृहस्पति हैं। दैवी आत्माओं में सबसे महान सनतकुमार दक्षिणामूर्ति के चरणों में बैठे थे।

१०२. साधना का रहस्यमय मार्ग गुरू की कृपा के द्वारा ही जाना जा सकता है।

१०३. अगर आप सच्चे हृदय से, आतुरतापूर्वक प्रार्थना करेंगे तो ईश्वर गुरू के स्वरूप में आपके पास आयेंगे।

पूर्व अभ्यास की आवश्यकता

१०४. अगर आपको 'प्राथमिक चिकित्सा' का ज्ञान पाना हो तो केवल उसके विषयों की चर्चा करके पा सकते हैं, किन्तु आप अगर एम.बी.बी.एस. कहलाना चाहते हैं, फिजीशियन या सर्जन के रूप में काम करना चाहते हैं तो आपको नियमित रूप में छः वर्ष का अभ्यास करना चाहिए। इसी प्रकार आप उपासना, प्रार्थना आदि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके उनकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए आपको तीन चीजें चाहिएः गुरूसेवा, गुरूभक्ति और गुरूकृपा।

१०५. गुरू को शिष्य का आत्मसमर्पण और गुरू की कृपा– ये दो चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं।

१०६. शरणागति गुरूकृपा को खींच लाती है और गुरूकृपा से शरणागति सम्पूर्ण बनती है।

१०७. शिष्य संसारसागर को पार कर सके इसके लिए ब्रह्मवेत्ता गुरू आत्मज्ञान देकर उसका अमूल्य हित करते हैं। यह काम गुरू के सिवाय और कोई नहीं कर सकता।

१०८. जिसके ऊपर सदैव गुरू की कृपा रहती है ऐसे शिष्य को धन्यवाद है।

१०९. हिन्दूओं के पुराणों में एवं अन्य पवित्र ग्रंथों में गुरूभक्ति की महत्ता गाने वाले सैंकड़ों उदाहरण भरे हुए हैं।

११०. जिसको सच्चे गुरू प्राप्त हुए हैं ऐसे शिष्य के लिए कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

१११. आप अपने इष्ट देवता को गुरूकृपा के द्वारा ही प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

११२. गुरू एक प्रकार का माध्यम हैं जिनके द्वारा ईश्वर की कृपा भक्त के प्रति बहती है।

११३. सच्चे गुरू की अपेक्षा अधिक प्रेम बरसाने वाले, अधिक हितकारी, अधिक कृपालु और अधिक प्रिय व्यक्ति इस विश्व में मिलना दुर्लभ है।

११४. शिष्य के लिए तो गुरू से उच्चतर देवता कोई नहीं है।

११५. सचमुच गुरू के सत्संग जितनी उन्नतिकारक दूसरी एक भी वस्तु नहीं है। गुरू की आवश्यकता के सम्बन्ध में प्राचीन काल के तमाम साधु–संन्यासियों का एक समान ही अभिप्राय था।

११६. गुरू के बिना साधक अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है ऐसा कहने का अर्थ होता है कि प्रवासी बाढ़ में उफनती हुई तूफानी नदी को नौका की सहायता के बिना ही पार कर सकता है।

११७. सत्संग माने गुरू का सहवास। उस सत्संग के बिना मन ईश्वर की ओर मुड़ नहीं सकता।

११८. आत्मवेत्ता गुरू के साथ एक क्षण का सत्संग भी लाखों वर्षों के तप की अपेक्षा कहीं उच्चतर है।

११९. हे साधकों ! 'मनमुखी साधना' कभी करना नहीं। पूर्ण श्रद्धा और भक्तिभाव से 'गुरूमुखी साधना' करो।

१२०. जिसने गुरू किये हैं वह उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म को जानता है।

१२१. गुरू साधक जगत के प्रकाशक दीप हैं।

१२२. निष्ठावान शिष्य के लिए जो गुरू सुख, शान्ति, आनन्द और अमरत्व का मूल एवं धुव्रतारक हैं ऐसे गुरू की जयजयकार हो !

१२३. आपके गुरू अथवा योग सिखाने वाले आचार्य आपको प्रणाम करें उसके पहले आप उन्हें प्रणाम करो।

१२४. योग के साधक को अपने गुरू में एवं ईश्वर में श्रद्धा और भक्तिभाव होना जरूरी है।

१२५. उसे गुरू के उपदेश में एवं पवित्र शास्त्रों में श्रद्धा होना जरूरी है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ५ – गुरू की महत्ता

गुरू ही एक मात्र आश्रय

१. रसोई सीखने के लिए आपको सिखाने वाले की आवश्यकता पड़ती है, विज्ञान सीखने के लिए आपको प्राध्यापक की आवश्यकता पड़ती है। कोई भी कला सीखने के लिए आपको गुरू चाहिए। तो क्या आत्मविद्या सीखने के लिए गुरू की आवश्यकता नहीं है ?
२. संसारसागर से उस पार जाने के लिए सचमुच गुरू ही एकमात्र आधार हैं ।
३. सत्य के कंटकमय मार्ग में आपको गुरू के सिवाय और कोई उचित मार्गदर्शन नहीं दे सकता।
४. गुरूकृपा के परिणाम अदभुत होते हैं।
५. आपके दैनिक जीवन के संग्राम में गुरू आपको मार्गदर्शन देंगे और आपका रक्षण करेंगे।
६. गुरू ज़ान के पथप्रदर्शक हैं।
७. गुरू, ईश्वर, ब्रह्म, आचार्य, उपदेशक, दैवी गुरू आदि सब समानार्थी शब्द हैं।
८. ईश्वर को प्रणाम करो उससे पहले गुरू को प्रणाम करो। क्योंकि वे आपको ईश्वर के पास ले जाते हैं।
९. आपके गुरू से मंत्र की दीक्षा लो। उससे आपको प्रेरणा मिलेगी और आप उच्च स्थिति पर पहुँच सकेंगे।
१०. आपके बदले में गुरू का साधना नहीं करेंगे, साधना तो आपको ही करनी होगी ।
११. गुरू आपको सच्ची राह दिखाएँगे।
१२. गुरू शिष्य के लिए सच्चा योग पसंद कर सकते हैं।
१३. गुरू की कृपा से शिष्य अपने मार्ग में स्थित विघ्नों एवं संशयों को पार कर सकता है।
१४. गुरू शिष्य को भयस्थानों में से एवं बन्धनों में से उठा लेंगे।
१५. अपने गुरू की सेवा करने के लिए अपने प्राण एवं शरीर का बलिदान देने की तैयारी रखो, तब वे आपकी आत्मा की सँभाल रखेंगे।
१६. आपको उठाकर समाधि में रख देंगे ऐसा चमत्कार कर दिखाने की अपेक्षा आपके गुरू से रखना नहीं। आप स्वयं कठिन साधना करो। भूखे आदमी को खुद ही खाना चाहिए।
१७. अगर आपको सदगुरू प्राप्त नहीं होंगे तो आप आध्यात्मिक मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
१८. अपने गुरू की पसन्दगी सोच–विचार कर एवं धैर्य से करो। क्योंकि बाद में आप गुरू से अलग नहीं हो सकते। अलग होने में बड़े में बड़ा पाप है।
१९. गुरू–शिष्य का सम्बन्ध पवित्र एवं जीवन पर्यन्त का है। यह बात ठीक से समझ लेना।

साधना का रहस्य

२०. पूरे अन्तःकरण से हृदयपूर्वक गुरू की सेवा करो। किसी भी प्रकार की अपेक्षा से रहित होकर अपने गुरू के प्रति प्रेम रखो। अपनी आय का दसवाँ हिस्सा आपके गुरू को समर्पित करो। गुरू के चरणकमलों का ध्यान करो। इसी जन्म में आपको आत्म–साक्षात्कार होगा। यह साधना का रहस्य है।
२१. शिष्य के लिए गुरू की पूजा करने के लिए शिष्य के लिए गुरूवार पवित्र दिन है।

२२. जिनको आत्मा विषयक ज्ञान है, शास्त्रों में जो पारंगत हैं, जो तमाम उत्कृष्ट गुणों से युक्त हैं वे सदगुरू हैं।
२३. जिसको आत्म–साक्षात्कारी गुरू मिलते हैं वह सचमुच तीन गुना भाग्यशाली होता है।
२४. अपने गुरू की क्षतियाँ (दोष) न देखो। अपनी क्षतियाँ देखो और उन्हें दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।
२५. गुरू की कसौटी करना मुश्किल है। एक कबीरजी ही दूसरे कबीरजी को पहचान सकता है। अपने गुरू में ईश्वर के गुणों का आरोपण करो, तभी आपको लाभ होगा।
२६. जिनके सान्निध्य में आपको आध्यात्मिक उन्नति महसूस हो, जिनके वक्तव्य से आपको प्रेरणा मिले, जो आपके संशयों को दूर कर सकें, जो काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हों, जो निःस्वार्थ हों, प्रेम बरसाने वाले हों, जो अहंपद से मुक्त हो, जिनके व्यवहार में गीता, भागवत, उपनिषदों का ज्ञान छलकता हो, जिन्होंने प्रभुनाम की प्याऊ लगाई हो उन्हें आप गुरू करना। ऐसे जागृत पुरूष के शरण की खोज करना।

गुरूभक्ति के लिये योग्यता

२७. गुरू के पास जाने के लिए आप योग्य अधिकारी होने चाहिए। आपमें वैराग्य की भावना, विवेक, गांभीर्य, आत्मसंयम एवं सदाचार जैसे गुण होने चाहिए।
२८. अगर आप ऐसा कहेंगे कि 'अच्छा गुरू कोई है ही नहीं' तो गुरू भी कहेंगे कि 'कोई अच्छा शिष्य है ही नहीं।' आप शिष्य की योग्यता प्राप्त करें तो आपको सदगुरू की योग्यता, महत्ता दिखेगी और समझ में आयेगी।
२९. गुरू आपके उद्धारक एवं संरक्षक हैं। सदैव उनकी पूजा करो, उनका आदर करो।
३०. गुरूपद भयंकर अभिशाप है।
३१. जो सत्, चित् और परमानन्द स्वरूप हैं, ऐसे गुरू को सदा साष्टांग प्रणाम करो।
३२. शिष्य को अपने गुरू की मूर्ति सदा स्मरण में रखना चाहिए, गुरू के पवित्र नाम का सदा जप करना चाहिए, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। इसी में साधना का रहस्य निहित है।
३३. शिष्य को गुरू की पूजा करना चाहिए क्योंकि गुरू से बड़ा और कोई नहीं है।
३४. गुरू के चरणामृत से संसारसागर सूख जाता है और मनुष्य आवश्यक आत्मसम्पत्ति प्राप्त कर सकता है।
३५. गुरू का चरणामृत शिष्य की तृषा शान्त कर सकता है।
३६. आप जब ध्यान करने बैठें तब अपने गुरू का एवं पूर्वकालीन सब संतों का स्मरण करें। आपको उनके आशीर्वाद प्राप्त होंगे।
३७. महात्माओं के ज्ञान के शब्द सुनें और उनका अनुसरण करें।
३८. शास्त्र एवं गुरू के द्वारा निर्दिष्ट शुभ कर्म करें।
३९. शान्ति का मार्ग दिखाने के लिए गुरू अनिवार्य है।
४०. 'वाहे गुरू' या गुरू नानक के अनुयाइयों का गुरूमंत्र है। 'गुरू ग्रन्थ साहब' पढ़ो तो आपको गुरू की महत्ता का परिचय होगा।
४१. गुरू की पूजा करके सदा उनका स्मरण करो। इससे आपको सुख प्राप्त होगा।
४२. श्रद्धा माने शास्त्रों में, गुरू के शब्दों में ईश्वर में और अपने– आप में विश्वास।

४३. किसी भी प्रकार के फल की अपेक्षा से रहित होकर गुरू की सेवा करना यह सर्वोच्च साधना है।
४४. श्रवण माने गुरू के चरणकमलों में बैठकर वेद का श्रवण करना।
४५. गुरूसेवा महान शुद्धि करने वाली है।
४६. आत्म–साक्षात्कार के लिए गुरू की कृपा आवश्यक है।
४७. जितनी भक्तिभावना प्रभु के प्रति रखनी चाहिए उतनी ही गुरू के प्रति रखो। तभी सत्य की अनुभूति होगी।
४८. सदैव एक ही गुरू से लगे रहो।
४९. ईश्वर आदि गुरू हैं जिनको स्थान एवं समय (देश–काल) की सीमा नहीं होती। एक शाश्वत युग तक वे समग्र मनुष्य जाति के गुरू हैं।
५०. कुण्डलिनी शक्ति को उसकी सुषुप्त अवस्था में से जागृत करने के लिए गुरू की अनिवार्य आवश्यकता रहती है।

गुरू के प्रकाश का अनुसरण करो

५१. अज्ञान का नाश करने वाले तथा ज्ञान देने वाले सदगुरू के चरणकमलों में कोटि–कोटि प्रणाम !
५२. समदर्शी संत–महात्मा और गुरू के सत्संग का एक भी मौका चूकना नहीं।
५३. आपके स्थूल मन के कहे अनुसार कभी चलना नहीं। आपके गुरू के वचनों का अनुसरण करें।
५४. उच्च आत्माओं एवं गुरू के स्मरण मात्र से भौतिक मनुष्यों की नास्तिक वृत्तियों का नाश होता है और अन्तिम मुक्ति हेतु प्रयास करने के लिए उनको प्रेरणा मिलती है। तो फिर गुरूसेवा की महिमा का तो पूछना ही क्या ?
५५. जिस प्रकार दो खरगोशों के पीछे दौड़ने वाला मनुष्य दो में से एक को भी पकड़ नहीं सकता उसी प्रकार जो शिष्य दो गुरूओं के पीछे दौड़ता है वह अपने आध्यात्मिक मार्ग में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।
५६. अहंभाव का नाश करने से शिष्यत्व की शुरूआत होती है।

शिष्यत्व की कुंजी है ब्रह्मचर्य और गुरूसेवा।

५७. शिष्यत्व की पहचान माने गुरूभक्ति।
५८. गुरू के चरणकमलों में आजीवन आत्म–समर्पण करना यह शिष्यत्व की निशानी है।
५९. गुरूदेव की मूर्ति का नियमित ध्यान करना यह शिष्यत्व का राजमार्ग है।
६०. गुरू महाराज के प्रति सम्पूर्णतः अज्ञापालन का भाव रखना, यह शिष्यत्व की नींव है।
६१. गुरू से मिलने की उत्कट इच्छा और उनकी सेवा करने की तीव्र आकांक्षा मुमुक्षत्व की निशानी है।
६२. देव, द्विज, आध्यात्मिक गुरू एवं ज्ञानी पुरूषों की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर का तप है।
६३. ब्राह्मणों, पवित्र आचार्यों एवं ज्ञानी पुरुषों को प्रणाम करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा ये शारीरिक तपश्चर्याएँ हैं।
६४. माँ बाप और आचार्यों की सेवा, गरीब और रोगियों की सेवा भी शारीरिक तपश्चर्या है।

गुरू द्वारा ब्रह्म का ज्ञान

६५. ब्रह्मविषयक ज्ञान अति सूक्ष्म है। शंकाएँ पैदा होती हैं और उनको दूर करने के लिए एवं मार्ग दिखाने के लिए ब्रह्मज्ञानी आध्यात्मिक गुरू की आवश्यकता रहती है।
६६. सत्य के सच्चे खोजी को सहायभूत होने के लिए गुरू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
६७. आध्यात्मिक गुरू साधक को अपनी प्रेमपूर्ण एवं विवेकपूर्ण निगरानी में रखते हैं तथा आध्यात्मिक विकास के विभिन्न स्तरों में से उसे आगे बढ़ाते हैं।
६८. सच्चे गुरू सदैव शिष्य के अज्ञान का नाश करने में तथा उसे उपनिषदों का ज्ञान देने में संलग्न रहते हैं।
६९. वेद भी ज्ञानमार्ग के पथप्रदर्शक गुरू की प्रशस्ति गाना चूकते नहीं हैं।
७०. साधक कितना भी बुद्धिमान हो फिर भी गुरू अथवा आध्यात्मिक आचार्य की सहाय के बिना वेदों की गहनता प्राप्त करना या उनका अभ्यास करना उसके लिए संभव नहीं है।
७१. गुरू अपने शिष्य की दैवी शक्तियों को जागृत करते हैं।
७२. प्रथम को अपने गुरू को, आध्यात्मिक आचार्य को खोज लो जो आपको अनन्त तत्त्व अथवा शाश्वत चेतनप्रवाह के साथ एकत्व साधने में सहाय कर सकें।
७३. अध्यात्ममार्ग में सलामतीपूर्वक, दृढ़ता से आगे बढ़ने के लिए अपने गुरू के द्वारा ही शिष्य को सूचनाएँ मिल सकती हैं।
७४. अपने गुरू की इच्छा के शरण हो जाओ। उनको आत्मसमर्पण करो। तभी आपका उद्धार होगा।

गुरू ही ईश्वर

७५. ईश्वर ही गुरू के रूप में दिखते हैं।
७६. सच्चे गुरू एवं सच्चे साधक बहुत कम होते हैं।
७७. योग्य शिष्यों को यशस्वी गुरू प्राप्त होते हैं।
७८. ईश्वर की कृपा गुरू का रूप लेती है।
७९. गुरू अपने शिष्य को अपने जैसा बनाते हैं, अतः वे पारस से भी महान हैं।
८०. संसारसागर को पार करने के लिए गुरू जैसी कोई नौका नहीं है।
८१. ''हे राम ! तुम्हारे तन, मन, धन, अपने सदगुरू के चरणों में समर्पित कर दो, जिन्होंने तुम्हें परम सुख या मोक्ष का मार्ग दिखाया है।''
८२. अपने गुरू या आचार्य के समक्ष हररोज अपने दोष कबूल करें, तभी आप इस दुनियावी निर्बलताओं से ऊपर उठ सकेंगे।
८३. गुरू दृष्टि, स्पर्श, विचार या शब्द के द्वारा शिष्य का परिवर्तन कर सकते हैं।
८४. गुरू और ईश्वर सचमुच एकरूप हैं।
८५. गुरू इस दुनिया में ईश्वर के सच्चे प्रतिनिधि हैं।
८६. गुरू आपके लिए 'इलेक्ट्रिक लिफ्ट' हैं। वे आपको पूर्णता के शिखर पर पहुँचाएँगे।
८७. गुरू के प्रति निःस्वार्थ एवं भक्तिभावपूर्वक सेवा यह पूजा, भक्ति, प्रार्थना और ध्यान है।
८८. ''हे राम ! जिससे आत्म-साक्षात्कार को गति मिलती है, जिससे चेतना की जागृति होती है, उसे गुरूदीक्षा कहते है।''
८९. यदि आप गुरू में ईश्वर को नहीं देख सकते तो फिर और किसमें देख सकेंगे ?

९०. जब तुम मेरे समक्ष निखालिस होकर अपना हृदय खोलोगे तभी मैं तुम्हे सहाय कर सकूँगा।

९१. अपने मित्रों, आदर्शों तथा गुरू या आध्यात्मिक आचार्य के प्रति वफादार एवं सन्निष्ठ रहो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ६ – गुरूभक्ति का अभ्यास

अनुकूल होने का सिद्धान्त

१. अनुकूल होने का विरल गुण बहुत कम लोगों में होता है, और वह एक उत्तम गुण है। उसके द्वारा शिष्य अपना कैसा भी स्वभाव हो फिर भी वह अपने गुरू के प्रति अनुकूल बनता है।
२. आजकल प्रायः सभी साधक अपने गुरूभाइयों के अनुकूल होना नहीं जानते।
३. शिष्य को अपने गुरू के अनुकूल होना और उनसे हिलमिल जाना चाहिए।
४. गुरूभक्ति जगाने के लिए नम्रता और आज्ञापालन के गुण जरूरी हैं।
५. शिष्य जब एक ही गुरू के सान्निध्य में रहते हुए अपने गुरूभाइयों के साथ अनुकूल होना नहीं जानता तब घर्षण होता है और वह अपने गुरू को नाराज करता है।
६. जहाज का कप्तान सदैव सावधान रहता है। मच्छीमार भी सदैव सावधान रहता है। ऑपरेशन थीएटर में सर्जन सदैव सावधान रहता है। इसी प्रकार भूखे–प्यासे शिष्य को भी गुरूसेवा में सदैव सावधान रहना चाहिए।

शिष्यत्व के मूल तत्त्व

७. अति नींद करने वाला, जड़, स्थूलकाय, निष्क्रिय, आलसी एवं मूर्ख मन का शिष्य गुरू संतुष्ट हों, इस प्रकार उनकी सेवा नहीं कर सकता।
८. जिस शिष्य में उपदेश के आचरण का गुण होता है वह अपने गुरू की सेवा में सफल होता है। आबादी एवं अमरत्व उसको आ मिलते है।
९. गुरू की सेवा करने की उत्कण्ठा एवं लगन शिष्य में होनी चाहिए।
१०. गुरू के प्रति भक्तिभाव तमाम योग्य मानवमहेच्छाओं का एकमात्र ध्येय है।
११. शिष्य जब गुरू के पास रहकर अभ्यास करता हो तब उसके कान श्रवण के लिए तत्पर होने चाहिए। वह जब गुरू की सेवा करता हो तब उसकी दृष्टि सावधान होनी चाहिए।
१२. शिष्य को अपने गुरू, माँ–बाप, बुजुर्ग, सब योगी एवं संतों के साथ अच्छी तरह बरताव करना चाहिए।
१३. अच्छी तरह बरताव करना माने अपने गुरू के प्रति अच्छा आचरण करना।
१४. गुरू शिष्य के आचरण पर से उसका स्वभाव तथा उसके मन की पद्धति जान सकते हैं।
१५. अपने पवित्र गुरू के प्रति अच्छा आचरण परम सुख के धाम का पासपोर्ट है।
१६. शिष्य जब गुरू की सेवा करता हो तब उसे तरंगी नहीं बनना चाहिए।
१७. अपने गुरू की सेवा करके प्राप्त किये हुए व्यवहारू ज्ञान की अभिव्यक्ति है 'आचरण '।
१८. दैवी एवं उत्तम गुण दुकान से खरीद करने की चीजें नहीं हैं। वे गुण तो लम्बे समय तक की हुई गुरू सेवा, श्रद्धा एवं भक्तिभाव द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

गुरू को आत्मसमर्पण

१९. ज्ञानार्जन के बाद गुरू को राजी–खुशी से, शीघ्र बिना झिझक से एवं बहुत राशि में गुरूदक्षिणा दो।

२०. गुरूदक्षिणा से असंख्य पापों का नाश होता है।
२१. गुरू को दी हुई दक्षिणा हृदयशुद्धि करने वाली महान वस्तु है।
२२. जो दक्षिणा गुरू को दी जाती है वह व्यवहारू प्रेम का प्रतीक है।
२३. तमाम गुरूभाइयों के कल्याण के लिए उदार भावना विकसित करो।
२४. दान का प्रारम्भ अपने गुरू से ही होता है।
२५. गुरू को दक्षिणा देने की आदत डालनी चाहिए।
२६. शिष्य के पास जो कुछ हो वह गुरू को सप्रेम भेंट चढ़ा देना चाहिए।
२७. गुरू के द्वारा चाहे जैसा भोजन, कपड़े एवं निवास प्राप्त हो उससे शिष्य को सन्तोष मानना चाहिए। अपने सच्चे मन एवं हृदय से गुरू की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।
२८. गुरू की सेवा के दौरान कैसी भी परिस्थितियों में साधक को मिलने वाला संतोष सदा आनन्द और शक्ति देता है।
२९. जो कुछ घटना घटित हो, उसमें सदा संतोष रखना चाहिए। सदैव याद रखोः 'उच्चात्मा गुरू को जो अच्छा लगता है वह आपकी पसन्दगी की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है।'
३०. संतोष जैसे परम गुण से युक्त शिष्य पर ही गुरू की कृपा उतरती है।
३१. गुरू की सेवा के दौरान शिष्य को अपनी साधारण बुद्धि का उपयोग करना चाहिए।

विवेक के घटक

३२. उच्चात्मा गुरू की कृपा के द्वारा शिष्य के हृदय में विवेकबुद्धि का उदय होता है।
३३. जिसको नैसर्गिक विवेकबुद्धि प्राप्त हुई है उसे अवश्य गुरूकृपा मिलती है।
३४. किसी भी चीज की स्पृहा के बिना अपने गुरू के प्रति अपना फर्ज अदा करो।
३५. शिष्य का कर्त्तव्य गुरू के आदेशों का वफादारी–पूर्वक एवं अविलम्ब पालन करना है।
३६. गुरू के प्रति अपने छोटे छोटे कर्त्तव्य निभाने में भी सतर्क रहो। आपको बहुत आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होगी।
३७. गुरू की सेवा में दासत्व जैसी कोई चीज नहीं है।
३८. गुरू की सेवा माने गुरू को आत्म–समर्पण।
३९. सब प्रकार की सेवा पवित्र एवं उत्तम है।
४०. गुरू के प्रति अपना कर्त्तव्य अदा करना माने सत्य धर्म का आचरण करना।
४१. अपने गुरू के प्रति अदा की हुई सेवा नैतिक फर्ज है, आध्यात्मिक 'टॉनिक' है। उससे मन एवं हृदय दैवी गुणों से भरपूर बनते हैं, पुष्ट बनते हैं।

सम्पूर्ण शरणागति

४२. तत्पर एवं सन्निष्ठ शिष्य अपने आचार्य की सेवा में अपने सम्पूर्ण मन एवं हृदय को लगा देता है।
४३. तत्पर शिष्य किसी भी परिस्थिति में अपने गुरू की सेवा करने का साधन खोज लेता है।
४४. अपने गुरू की सेवा करते हुए जो साधक सब आपत्तियों को सह लेता है वह अपने प्राकृत स्वभाव को जीत सकता है।
४५. शान्ति का मार्ग दिखाने वाले गुरू के प्रति शिष्य को सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए।
४६. कृतघ्न बेवफा शिष्य इस दुनिया में हीनभाग एवं दुःखी है। उसका भाग्य दयनीय, शोचनीय एवं अफसोस–जनक है।

गुरू की प्रतिष्ठा

४७. पवित्र वेदों के रहस्योंदघाटक, आदि एवं पूर्ण ब्रह्मरूप महान गुरू को मैं नमस्कार करता हूँ, जो ज़ानविज्ञान रूप वेदों के सार को भ्रमर की तरह चूसकर अपने भक्तों को देते हैं।

४८. सच्चे शिष्य को अपने हृदय के कोने में अपने सम्माननीय गुरू के चरणकमलों की प्रतिष्ठा करना चाहिए।

४९. शिष्य जब अपने गुरू से मिले तब उसका सबसे प्रथम फर्ज है खूब नम्र भाव से अपने गुरू को प्रणाम करना।

५०. भागवत में अवधूत की एक कथा आती है जिनको चौबीस उपगुरू थे, जैसे कि पंचमहाभूत, सूर्य, चन्द्र, समुद्र, प्राणी आदि। ये नगण्य होते हुए भी इन सबने अपने ढंग से उनको सर्वोच्च ज़ान दिया था।

५१. जो शिष्य अन्य किसी का विचार किये बिना, एकाग्र मन से केवल अपने गुरू की ही पूजा करता है वह श्रेष्ठ शिष्य है।

५२. जब साधक में सत्त्व की वृद्धि होती है तब वह सदाचारी बनता है और उसमें गुरू के प्रति भक्तिभाव विकसित होता है।

५३. गुरू समदृष्टि के प्रतीक हैं अतः वे अपने तमाम शिष्यों के प्रति समभाव रखते हैं।

५४. श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं– "मैं पुरोहितों में वशिष्ठ हूँ, गुरूओं में बृहस्पति हूँ, साधुओं में मैं नारायण हूँ एवं ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ।"

५५. शिष्य जब अपने गुरू की सेवा करता हो तब उसे दूसरों की सेवा कभी लेना नहीं चाहिए। आध्यात्मिक विकास में उसके लिए यह एक महान अवरोध है।

५६. दूसरों को गुरूभाई बनाकर अपने गुरू का यश बढ़ाओ। गुरूभक्ति विकसित करने का यह राजमार्ग है।

विद्वता से नम्रता बढ़कर है

५७. आप महान विद्वान एवं धनवान हों फिर भी गुरू एवं महात्माओं के समक्ष आपको बहुत ही नम्र होना चाहिए।

५८. शिष्य अधिक विद्वान न हो लेकिन वह मूर्तिमंत नम्रता का स्वरूप हो तो उसके गुरू को उस पर अत्यंत प्रेम होता है।

५९. अगर आपको नल से पानी पीना हो तो आपको स्वयं नीचे झुकना पड़ेगा। इसी प्रकार अगर आपको गुरू करना हो तो आपको विनम्रता के प्रतीक बनना पड़ेगा।

६०. जो मनुष्य वफादार एवं बिल्कुल नम्र बनते हैं उनके ऊपर ही गुरू ही कृपा उतरती है।

६१. गुरू के चरणकमलों की पूजा के लिए नम्रता के पुष्प के अलावा और कोई श्रेष्ठ पुष्प नहीं है।

श्रद्धा का अर्थ

६२. श्रद्धा माने गुरू में विश्वास।

६३. श्रद्धा माने अपने पवित्र आचार्य एवं महात्माओं के कथन, वाणी, कार्यों, लेखन एवं उपदेशों में विश्वास।

६४. आचार्य प्रमाण के रूप में जो कहें उसमें अन्य कोई प्रमाण की परवाह किये बिना दृढ़ विश्वास रखना –उसका नाम है श्रद्धा।

६५. गुरू में सम्पूर्ण श्रद्धा रखें और अपने आपको पूर्णतः गुरू के शरण में ले जाओ। वे आपकी निगरानी करेंगे। इससे सब भय, अवरोध एवं कष्ट पूर्णतः नष्ट होंगे।

६६. सदगुरू में दृढ़ श्रद्धा आत्मा की उन्नति करती है, हृदय को शुद्ध करती है एवं आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जाती है।

६७. गुरू के उपदेशों में सम्पूर्ण श्रद्धा रखना यह शिष्यों का सिद्धान्त होना चाहिए।

आज्ञापालन का प्रकार

६८. आज्ञापालन माने गुरू एवं बुजुर्गों के आदेशों को पालने की इच्छा।

६९. जो शिष्य अपने गुरू की आज्ञा मानता है वही अपनी स्थूल प्रकृति पर नियंत्रण पा सकता है।

७०. नम्रता, भक्तिभाव, निरहंकारीपना आदि सब दिव्य गुण गुरू की आज्ञा का पालन करने से ही प्रकट होते हैं।

७१. गुरू के आदेशों में शंका नहीं करना या उनके पालन में आलस्य नहीं करना यही गुरू के प्रति सच्ची आज्ञाकारिता है।

७२. गुरू की आज्ञा का पालन सब कार्यों में सफलता की जननी है।

७३. गुरू जो आज्ञा करें वह काम करना और मना करें वह काम न करना यही गुरू के प्रति सच्ची आज्ञाकारिता है।

७४. दंभी शिष्य गुरू की आज्ञा भय के कारण मानता है। सच्चा शिष्य प्रेम के खातिर शुद्ध प्रेम से गुरू की आज्ञा का पालन करता है।

७५. शिष्य का प्रथम पाठ है गुरू के प्रति आज्ञाकारिता।

७६. भलाई की एक नदी है जो ईश्वर के चरणकमलों में से निकलती है और गुरू के आज्ञापालन के मार्ग से बहती है।

७७. यदि शिष्य के हृदय में संतोष न हो तो यह बताता है कि शिष्य में गुरू के प्रति आज्ञापालन का भाव पूरा नहीं है।

७८. आपमें भाव एवं तत्परता होगी तो गुरू आपकी भेंट से प्रसन्न होंगे, भेंट के प्रकारों से नहीं।

७९. शिष्य को अत्यन्त तत्परतापूर्वक एवं ध्यानपूर्वक अपने गुरू की सेवा करनी चाहिए।

आध्यात्मिक नीति–रीति

८०. अपने–आपको आचार्य की सेवा में सौंप दो। तन, मन एवं आत्मा को खूब तत्परता से अर्पण कर दो।

८१. गुरूश्रद्धा का सक्रिय स्वरूप माने गुरू के चरण कमलों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना।

८२. गुरू सेवा के नित्यक्रम में खूब नियमित रहो।

८३. अपने आचार्य की दैनिक निजी सेवा में घड़ी के समान नियमित रहो।

८४. आचार्य एवं हरएक संत का आदर करना यह नम्रता का चिह्न है।

८५. आचार्य एवं आदरणीय व्यक्तियों की उपस्थिति में ऊँची आवाज से बोलो नहीं।

८६. गुरू के वचनों में विश्वास रखना यह अमरत्व के द्वार खोलने के लिए गुरू चाबी है।

८७. जब आप किसी महान गुरू के शिष्य हों तब अन्य किसी को आप अपने शिष्य बनाओ नहीं एवं खुद गुरू बनने का प्रयास करो नहीं। उनको अपने गुरूभाई मानो।
८८. गुरू करना और बाद में उनको धोखा देकर उनका त्याग कर देना इसकी अपेक्षा गुरू नहीं करना और भवाटवी में भटकना बेहतर है।
८९. जो मनुष्य विषयवासना का दास है वह गुरू की सेवा नहीं कर सकता, गुरू को आत्मसमर्पण नहीं कर सकता। फलतः वह संसार के कीचड़ से अपने आपको बचा नहीं सकता।

मिलन की शक्ति

९०. गुरू से धोखा करना यह अपनी ही कब्र खोदने का साधन है।
९१. गुरू और शिष्य के बीच जो शक्ति जोड़ने का काम करती है वह शुद्ध प्रेम होना चाहिए।
९२. गुरू का कृपा–प्रसाद और शिष्य की कोशिश मिलती है तब अमरत्व रूपी बालक का जन्म होता है।
९३. शिष्य को ज्ञान दिये बिना ही गुरू को उसके पास से गुरूदक्षिणा नहीं लेना चाहिए।
९४. शिष्य को अपने समग्र जीवन के दौरान गुरू के यश की पताका लहराना चाहिए।
९५. गुरू के चरणकमल में आत्मसमर्पण करना यह शिष्य का आदर्श होना चाहिए।
९६. गुरू महान हैं। विपत्तियों से डरना नहीं। हे वीर शिष्यों ! आगे बढ़ो।
९७. गुरूकृपा अणुशक्ति से अधिक शक्तिशाली है।
९८. शिष्य के ऊपर जो आपत्तियाँ आती हैं वे छुपे वेश में गुरू के आशीर्वाद के समान होती हैं।
९९. गुरू के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करना यह सच्चे शिष्य का जीवनमंत्र होना चाहिए।

गुरू की सेवा

१००. साक्षात् प्रेम एवं आनन्दस्वरूप अपने गुरू की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो सेवा में असीम आनन्द एवं परम सुख मिलेगा।
१०१. नम्रतापूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, संशयरहित होकर, बाह्य आडम्बर के बिना, द्वेष रहित बनकर, असीम प्रेम से अपने गुरू की सेवा करो।
१०२. पृथ्वी पर के साक्षात् ईश्वर स्वरूप गुरू के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करेंगे तो वे भयस्थानों से आपका रक्षण करेंगे, आपकी साधना में आपको प्रेरणा देंगे तथा अन्तिम ध्येय तक आपके पथप्रदर्शक बनेंगे।
१०३. गुरू की कृपा अखूट, असीम और अवर्णनीय है।
१०४. गुरू का उच्छिष्ट प्रसाद लेने से असाध्य रोग मिटते हैं।
१०५. गुरू पर श्रद्धा एक ऐसी चीज है जो प्राप्त करने के बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता।
१०६. इस श्रद्धा के द्वारा निमेष मात्र में आप परम पदार्थ पा लेंगे।
१०७. गुरू के वचन एवं कर्म में श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो। यही गुरूभक्ति विकसित करने का मार्ग है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ७ – साधक के सच्चे पथप्रदर्शक

शिष्यत्व के मूल सिद्धान्त

१. साधक अगर श्रद्धा एवं भक्तिभाव से अपने गुरू की सेवा नहीं करेगा तो उसके तमाम व्रत, तप कच्चे घड़े में से पानी की तरह टपककर बह जाएँगे।
२. मन एवं इन्द्रियों का संयम, गुरूभगवान का ध्यान, गुरू की सेवा में धैर्य, सहन शक्ति, आचार्य के प्रति भक्तिभाव, संतोष, दया, स्वच्छता, सत्यवादिता, सरलता, गुरू की आज्ञा का पालन.... ये सब अच्छे शिष्य के लक्षण हैं।
३. सत्य के साधक को मन एवं इन्द्रियों पर संयम रखकर अपने आचार्य के घर रहना चाहिए और खूब श्रद्धा एवं आदरपूर्वक गुरू की निगरानी में शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए।
४. उसे चुस्तता से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और आचार्य की पूजा करना चाहिए।
५. शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य को साक्षात् ईश्वर के रूप में माने, मनुष्य के रूप में कदापि नहीं।
६. शिष्य को आचार्य के दोष नहीं देखना चाहिए क्योंकि वे तमाम देवों के प्रतिनिधि हैं।
७. शिष्य को गुरू के लिए भिक्षा माँगकर लाना चाहिए एवं खूब श्रद्धा तथा भक्तिभावपूर्वक उन्हें भोजन कराना चाहिए।
८. शिष्य को सब सुखवैभव का विष की त्याग कर देना चाहिए और अपना शरीर गुरू की सेवा में सौंप देना चाहिए।
९. शास्त्रों का अभ्यास पूरा करके शिष्य को चाहिए कि वह गुरू को दक्षिणा दे और उनकी आज्ञा लेकर अपने घर वापस लौटे।
१०. जो गुरूपद का उपयोग आजीविका के साधन के रूप में करता है वह धर्म का नाश करने वाला है।
११. ब्रह्मचारी का मुख्य कर्त्तव्य पूरे हृदय से अपने आचार्य की सेवा करना है।
१२. गुरू की कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी निजि सेवा और उनकी आज्ञा का पालन जितना सहायरूप है उतना सहायरूप तप, यात्रा, भेंट, दान आदि नहीं है।
१३. वेद, प्रत्यक्ष ज्ञान, गुरूवचन और अनुमान ये चार ज्ञान के प्रमाण हैं।
१४. हरएक कर्म में दुःख के बीज समाविष्ट हैं किन्तु गुरू की सेवा के विषय में ऐसा नहीं है।
१५. गुरू के आदेशों का पालन करने के लिए शिष्य को कभी भी धन, भोगविलास, सुखवैभव और अपने शरीर का भी त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

गुरू सम्बन्धी धर्म

१६. जो तन, मन और धन को गुरू के चरणों में अर्पण कर देता है वह गुरूभक्ति का विकास कर लेता है।
१७. जिससे गुरूचरणों के प्रति भक्तिभाव बढ़े वह परम धर्म है।

१८. नियम माने गुरूमंत्र का जप, गुरूसेवा के दौरान तपश्चर्या, गुरूवचन में श्रद्धा, आचार्य–सेवन, संतोष पवित्रता, शास्त्र का अध्ययन और गुरूभक्ति अथवा गुरू की शरण।
१९. तितिक्षा माने गुरू के आदेशों का पालन करते हुए दुःख सहन करना।
२०. त्याग माने गुरू का निषेध हो ऐसे कर्मों का त्याग करना।
२१. जो अपने गुरू की आज्ञा का पालन नहीं करता तथा गुरू की सेवा नहीं करता वह मूर्ख है।
२२. भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं– "दुष्प्राप्य मनुष्यदेह मजबूत नौका जैसी है। गुरू उस नौका के कर्णधार हैं। वे नौका को संभालते हैं। उस नौका को चलाने वाला मैं (कृष्ण) अनुकूल पवन हूँ।" जो मनुष्य ऐसी नौका और ऐसे साधन से भवसागर पार करने का प्रयत्न नहीं करता वह सचमुच आत्मघातक है।
२३. मनुष्य अनादि अज्ञान के प्रभाव में होने के कारण गुरू की सहाय के बिना आत्म–साक्षात्कार नहीं कर सकता।
२४. गुरू जो कहते हैं उसमें कुछ गलत हो सकता है ? नहीं?उसके पीछे कोई कारण अवश्य होता है। मनुष्यबुद्धि वहाँ पहुँच नहीं पाती।
२५. गुरू की निजी सेवा सर्वोच्च प्रकार का योग है।
२६. गुरू की निजी सेवा करने से शिष्य अपने मन को वश में कर सकता है।

प्रकृति के तीन गुण

२७. क्रोध, लोभ, असत्य, क्रूरता, याचना, दंभ, झगड़ा, भ्रम, निराशा, शोक, दुःख, निद्रा, भय, आलस्य.... ये सब तमोगुण हैं, जो अनेक जन्मों के बावजूद भी जीते जी नहीं जा सकते। किन्तु श्रद्धा एवं भक्ति से गुरू की की हुई निजी सेवा इन सब दुर्गुणों का नाश कर देती है।
२८. गुरू के वचन में और ईश्वर में श्रद्धा रखना, यह सत्त्वगुण की निशानी है।
२९. गुरू के भोजन के बाद जो खुराक बचा हो, वह बहुत सात्त्विक होता है।

कामवासना का बिल्कुल त्याग

३०. साधक को विजातीय व्यक्ति का सहवास नहीं करना चाहिए। जो लोग ऐसे सहवास के शौकीन हों उनका संग भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि उससे मन क्षुब्ध होता है तब शिष्य भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक अपने गुरू की सेवा नहीं कर सकता।
३१. शिष्य अगर अपने आचार्य की आज्ञा का पालन नहीं करता है तो उसकी साधना व्यर्थ है।
३२. बुद्धिमान साधक को तमाम प्रकार के खराब संग से दूर रहना चाहे। उसे संतों एवं गुरू का संग करना चाहिए। उनके संग से वैराग्य विकसित होता है, तमाम वासनाएँ दूर होकर मन शुद्ध बनता है।
३३. जैसे अग्नि के पास बैठने से ठण्ड, भय, अन्धकार दूर होता है वैसे ही जो शिष्य गुरू के पास रहता है उसके अज्ञान, मृत्यु का भय तथा सब अनिष्टों का नाश होता है।
३४. जो इस संसार–सागर में इधर उधर डूबते उतरते हैं उनके लिए बुद्धिमान गुरू का आश्रय श्रेष्ठ है।
३५. सूर्य के पास से केवल एक बाह्य दृष्टि ही प्राप्त होती है किन्तु गुरू के पास से ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई प्रकार की कई दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

गुरू माने साक्षात् देवता

३६. गुरू इस पृथ्वी पर साक्षात् ईश्वर हैं, सच्चे मित्र एवं विश्वासपात्र बन्धु हैं।

३७. "हे भगवान ! हे भगवान ! मैं आपके आश्रय में आया हूँ। मुझ पर दया करो। मुझे जन्म–मृत्यु के सागर से उबारो।" ऐसा कहकर शिष्य को अपने गुरू को दण्डवत प्रणाम करना चाहिए।

३८. निरपेक्ष भक्तिभावपूर्वक जो गुरू के चरणों की पूजा करता है उसे सीधी गुरूकृपा प्राप्त होती है।

३९. आचार्य से प्राप्त की हुई तथा सेवा से तीक्ष्ण बनी हुई ज्ञानरूप तलवार एवं ध्यान की सहायता से शिष्य मन, वचन, प्राण और देह के अहंकार को काट देता है तथा सब रागद्वेष से मुक्त होकर इस संसार में स्वेच्छापूर्वक विहार करता है।

४०. तीव्र गुरूभक्ति के शक्तिशाली शस्त्र से मन को दूषित करने वाली आसक्ति को मूल सहित काट दिया जाय तब तक विषयों का संग त्याग देना चाहिए।

४१. गुरू का आश्रय लेकर जो योग का अभ्यास करता है वह विविध अवरोधों से पीछे नहीं हटता।

४२. सच्चे शिष्य को अपने गुरू के पवित्र चरणों में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट या शर्म के बिना साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना चाहिए। यह उसके सम्पूर्ण आत्मसमर्पण की निशानी है।

४३. किसी भी फल की आशा से रहित होकर जो गुरूसेवा और गुरूपूजा में लगा रहता है वह उल्टे मार्ग में नहीं जाएगा। उसे सेवा पूजा का प्रकाश अवश्य प्राप्त होगा।

४४. ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाली पवित्र गुरूगीता का जो हररोज अभ्यास करता है वही सचमुच विशुद्ध है। उसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

४५. जो अपने गुरू के यश में आनन्दित होता है और दूसरों के समक्ष अपने गुरू के यश का वर्णन करने में आनन्द का अनुभव करता है उसे सचमुच गुरू कृपा प्राप्त होती है।

४६. परमात्मा और परब्रह्मस्वरूप गुरू की अज्ञाननाशक उपस्थिति में आपके सब संशयों का नाश होगा, जैसे सूर्योदय होते ही ओस की बूँदें नष्ट होती हैं।

४७. "हे महान, परम सम्माननीय गुरू ! मैं आदरपूर्वक आपको नमस्कार करता हूँ। मैं आपके चरणकमलों के प्रति अचूक भक्तिभावव कैसे प्राप्त कर सकूँ और आपके दयालु चरणों में मेरा मन हमेशा भक्तिभावपूर्वक कैसे सराबोर रहे यह कृपा करके मुझे कहें।" इस प्रकार कहकर खूब नम्रतापूर्वक एवं आत्मसमर्पण की भावना से शिष्य को चाहिए कि वह गुरू को दण्डवत प्रणाम करे और उनके आगे गिड़गिड़ाए।

४८. साक्षात् ईश्वर जैसे सर्वोच्च पद प्राप्त किये हुए गुरू की जय हो ! गुरू का यश गाने वाले धर्मशास्त्रों की जय हो ! जिसने केवल ऐसे गुरू का ही आश्रय लिया है ऐसे सच्चे शिष्य की जय हो !

गुरू कृपा से ईश्वर–साक्षात्कार

४९. वादविवाद, बुद्धि, गहन अभ्यास, दान या तप से ईश्वर–साक्षात्कार नहीं होता। वह तो जिसने गुरूकृपा प्राप्त की हो उसको ही होता है।

५०. गुरूकृपा का छोटे से छोटा बिन्दू भी इस संसार के कष्टों से मनुष्य को मुक्त करने में पर्याप्त है।

५१. केवल गुरूकृपा के द्वारा ही साधक आध्यात्मिक मार्ग में लगा रह सकता है एवं तमाम प्रकार के बन्धनों एवं आसक्तियों को तोड़ सकता है।

५२. जो शिष्य अहंकार से भरा हुआ है, जो गुरू के वचनों को सुनता नहीं है उसका आखिर नाश होता है।

५३. जिन गुरू को आत्म–साक्षात्कार हुआ है ऐसे गुरू में और ईश्वर में कोई फर्क नहीं है। दोनों समान हैं और एकरूप हैं।

५४. गुरू के सत्संग की सहाय के बिना नये नये साधक के कुसंस्कारों में मूलतः परिवर्तन करने की बिल्कुल गुंजाईश नहीं है।

५५. गुरू का सहवास साधक के लिए एक सुरक्षित नौका है जो उसे अन्धकार के उस पार निर्भयता के किनारे पर पहुँचाती है।

शास्त्रों में गुरू की प्रशंसा

५६. भागवत, रामायण, महाभारत, योगवाशिष्ठ आदि में गुरूभक्ति की महिमा सुन्दर ढंग से गायी गई है। हररोज उन ग्रन्थों का अभ्यास करो। आपको उनमें से प्रेरणा मिलेगी।

५७. आत्म–साक्षात्कारी गुरू के लिखे हुए ग्रन्थ परोक्ष सत्संग जैसे हैं। आप जब संपूर्ण श्रद्धा और भक्ति से उनका अध्ययन करते हैं तब आपके पावन गुरू के साथ आपका पूर्ण सायुज्य होता है।

५८. जो अपने साधनापथ में सच्चे हृदय से प्रयत्न करता है और जो ईश्वर–साक्षात्कार के लिए तड़पता है ऐसे योग्य शिष्य पर ही गुरू की कृपा उतरती है।

५९. आजकल शिष्य लोग ऐशो–आरामवाला जीवन जीते हैं और गुरू की आज्ञा का पालन किये बिना ही उनकी कृपा की आशा रखते हैं।

६०. गुरू एवं महात्माओं के सत्संग की महिमा विषयक गुरू नानक, तुलसीदास, शंकराचार्य, व्यास और वाल्मीकि ने ग्रंथ लिखे हैं।

६१. पुरंदरदास, निश्चलदास, सहजोबाई, मीराबाई, ज्ञानेश्वर, एकनाथ आदि ने गुरूकृपा की महिमा गाई है।

६२. जो लोग नियमित सत्संग करते हैं उनमें ईश्वर और शास्त्रों में श्रद्धा, गुरू एवं ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का धीरे–धीरे विकास होता है।

६३. गुरू का संग 'माँग और पूर्ति' का प्रश्न है। अगर सच्चे हृदय की माँग हो तो पूर्ति तुरन्त हो जाएगी। कुदरत का यह अटल नियम है।

६४. आपको अगर सचमुच ईश्वर–साक्षात्कार की तड़प होगी तो आपके आध्यात्मिक गुरू को आप अपने घर के द्वार पर खड़े पाएँगे।

६५. आत्म–साक्षात्कारी महान गुरू का संग प्राप्त करना मुश्किल है, किन्तु वह संग बहुत ही लाभकारी है। आप अगर भक्तिभावपूर्वक, ईमानदारी से प्रार्थना करेंगे तो वे स्वयं आपके पास आयेंगे।

६६. इस दुनिया में उत्तम वस्तुएँ अत्यंत अल्प मात्रा में होती है जैसे की कस्तूरी, केसर, रेडियम, चन्दन, विद्वान, सदाचारी पुरूष तथा परोपकारी स्वभाव के लोग बहुत कम होते हैं। अगर ऐसा ही है तो संतों, भक्तों, योगियों, पयगम्बरों, दृष्टाओं तथा आत्म–साक्षात्कारी गुरू के विषय में तो कहना ही क्या ?

६७. आप अगर आत्म–साक्षात्कारी गुरू की सेवा करेंगे तो आपके मोक्ष की समस्या हल हो जाएगी।

६८. महात्माओं का संग ईश्वरकृपा से ही प्राप्त होता है।

६९. गुरू की सेवा करके आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छुक साधकों को कुसंग से अवश्य दूर रहना चाहिए।
७०. इस माया का रहस्य कौन जान सकता है ? जो कुसंग का त्याग करते हैं, जो उदार हृदयवाले गुरू की सेवा करते हैं, जो अहंभाव से मुक्त हैं और जो ममता रहित हैं वे इस माया का रहस्य जान सकते हैं।
७१. राग–द्वेष से मुक्त ऐसे गुरू का संग करने से मनुष्य आसक्ति रहित बनता है। उसे वैराग्य प्राप्त होता है।
७२. उसमें गुरू के चरणकमलों के प्रति भक्ति जागती है।
७३. जो भक्तिभावपूर्वक गुरू की सेवा करता है वह जीवन के परम तत्त्व को प्राप्त करता है।
७४. साधक का मन किसी भी प्रकार के प्रयत्न बिना ही, गुरू की सेवा से अपने आप एकाग्र होने लगता है।
७५. गुरू ग्रंथसाहब कहते हैं कि गुरू के बिना ईश्वरप्राप्ति का मार्ग नहीं मिल सकता। गुरू स्वयं ईश्वर स्वरूप होने के कारण वे साधक को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में ले जाते हैं। उस मार्ग में वे पथप्रदर्शक बनते हैं। गुरू ही शिष्य को ऐसा अनुभव करा सकते हैं कि वह स्वयं ही ईश्वर हैं।

गुरू का महान प्रेम

७६. दैवी गुणों का विकास करने वाला महान रहस्य गुरूभक्ति में निहित है।
७७. जो शिष्य अपने गुरू के चरणकमलों में सम्पूर्ण आत्म–समर्पण करता है उसे गुरू स्वयं ही सब दैवी गुण प्रदान करते हैं।
७८. जो अपने मन पर संयम रखकर ध्यान नहीं कर सकते उनके लिए तो गुरूभक्ति जगाकर गुरूसेवा करना ही एक उपाय है।
७९. गुरू शिष्य की मुश्किलों एवं अवरोधों को जानते हैं, क्योंकि वे त्रिकालज्ञानी है। अतः मन में ही उनकी प्रार्थना करें। वे आपके अवरोधों को दूर करेंगे।
८०. गुरू के दर्शन अन्धकार का सर्वथा नाश करते है और असीम आनन्द देते है।
८१. भगवान आपका कल्याण करें और आप सब गुरूभक्ति जैसे दुर्लभ दैवी गुण का विकास करो।
८२. भगवान स्वयं ही आचार्य के रूप में दीखते हैं। वे प्रत्यक्ष मानव के स्वरूप में दर्शन देते हैं अथवा ब्रह्मनिष्ठ महान ज्ञानी के रूप में दर्शन देते हैं।
८३. जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन का एक मात्र हेतु महान गुरू की सेवा करना है।

गुरू के साथ तादात्म्य

८४. केवल बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में एक व्यक्ति की कोई सत्ता नहीं है। उसमें वास्तविकता का ज्ञान नही है। किन्तु जब व्यक्ति गुरू के सम्पर्क में आता है तब उसमें सच्चा ज्ञान, सच्ची शक्ति और सच्चा आनन्द प्रकट होता है। वे गुरू भी ऐसे हों जिन्होंने परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित किया हो।
८५. शिष्य को घास के तिनके से भी अधिक नम्र होना चाहिए। तभी गुरू की कृपा उस पर उतरेगी।
८६. जब शिष्य ध्यान नहीं कर सकता हो, जब आध्यात्मिक जीवन का मार्ग नहीं जान सकता हो तब उसे गुरू की सेवा करना चाहिए, उनके आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। उसके लिए केवल यही उपाय है।

८७. मन जब प्रशान्त और स्थिर हो तब आप ध्यान कर सकते हैं। मन अगर क्षुब्ध हो तो जप करें, पुस्तक पढ़ें और श्रद्धा–भक्तिपूर्वक गुरू की सेवा करें। गुरू के साथ मानसिक सम्बन्ध स्थापित करें। तभी आपका जल्दी विकास हो सकेगा।

८८. जन्म से लेकर मृत्यु तक सारा जीवन विद्यार्थी अवस्था का समय है। तभी विद्यार्थी मोक्षदायक आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

८९. जो शिष्य गुरूकुल में रहते हों उन्हें इस नाशवंत दुनिया की किसी भी चीज की तृष्णा न रहे इसके लिए हो सके उतना प्रयास करना चाहिए।

९०. जिसने गुरू प्राप्त किये हैं ऐसे शिष्य के लिए ही अमरत्व के द्वार खुलते हैं।

९१. साधकों को इतना ध्यान में रखना चाहिए कि केवल पुस्तकों का अभ्यास करने से या वाक्य रटने से अमरत्व नहीं मिलता। उससे तो वे अभिमानी बन जाते हैं। जिसके द्वारा जीवन का कूटप्रश्न हल हो सके ऐसा सच्चा ज्ञान तो गुरूकृपा से ही प्राप्त हो सकता है।

९२. जिन्होंने ईश्वर के दर्शन किये हैं ऐसे गुरू का संग और सहवास ही शिष्य पर गहरा प्रभाव डालता है। तमाम प्रकार के अभ्यास की अपेक्षा गुरू का संग श्रेष्ठ है।

९३. गुरू का सत्संग शिष्य का पुनर्जीवन करने वाला मुख्य तत्त्व है। वह उसे दिव्य प्रकाश देता है और उसके लिए स्वर्ग के द्वार खोल देता है।

९४. गुरू का संग ही साधक को उसके चारित्र्य के निर्माण में, उसकी चेतना को जागृत करके अपने स्वरूप का सच्चा दर्शन करने में सहाय कर सकता है।

शिष्य को मार्गदर्शन

९५. गुरू की सेवा, गुरू की आज्ञा का पालन, गुरू की पूजा और गुरू का ध्यान, ये चीजें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। शिष्य के लिए आचरण करने योग्य उत्तम चीजें हैं।

९६. शिष्य को बार–बार देवी सरस्वती की, जिन्होंने आशीर्वाद दिये हों ऐसे गुरू की एवं सर्वोच्च पिता परमेश्वर की प्रार्थना करना चाहिए।

९७. गुरू के पास अभ्यास पूरा करने के बाद भी समग्र जीवनपर्यन्त शिष्य को अपने आचार्य के प्रति कृतज्ञता का भाव बनाये रखना चाहिए।

९८. गुरू की कृपा तो सदा रहती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिष्य को गुरू के वचनों में श्रद्धा रखना चाहिए और उनके आदेशों का पालन करना चाहिए।

९९. बुद्धि को तेजस्वी रखने के लिए स्वाध्याय की आवश्यकता है जिससे बुद्धि उल्टे मार्ग में न जाय या उसका दुरूपयोग न हो। उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है महात्माओं का सत्संग। अर्थात् हमें गुरू करना चाहिए जिससे हमें निरन्तर मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। वे हमें मार्ग में आने वाले भयस्थान दिखाते रहें। फिर गुरू से प्राप्त ज्ञान की सहायता से शिष्य योग्य पथ पर आगे बढ़ने में शक्तिमान होगा।

आत्म–साक्षात्कार का रहस्य

१००. जीवन के परमतत्त्व रूपी वास्तविकता के सम्पर्क का रहस्य गुरूभक्ति है।

१०१. सच्चे शिष्य के लिए तो गुरूवचन माने कानून।

१०२. गुरू का दास बनना माने ईश्वर का सेवक बनना।

१०३. जिन्होंने प्रभु को निहारा है और जो योग्य शिष्य को प्रभु के दर्शन करवाते हैं वे ही सच्चे गुरू हैं।

१०४.बनावटी गुरू से सावधान रहना। ऐसे गुरू पूरे के पूरे शास्त्र रट लेते हैं और शिष्यों को उनमें से दृष्टान्त देते हैं लेकिन वे जो उपदेश देते हैं उसका आचरण वे खुद नहीं कर सकते।

१०५. आलसी शिष्य को गुरूसेवा नहीं मिल सकती।

१०६. राजसी स्वभाव के शिष्य को लोकसंग्रह करने वाले गुरू के कार्य समझ में नहीं आते।

१०७.किसी भी कार्य का प्रारंभ करने से पहले शिष्य को गुरू की सलाह लेना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ८ – गुरूभक्ति का विवरण

आध्यात्मिक शिक्षा का अर्थ

१. मुक्तात्मा गुरू की सेवा, उन्होंने लिखे हुए पुस्तकों का अभ्यास और उनकी पवित्र मूर्ति का ध्यान, यह गुरूभक्ति विकसित करने का सुनहरा मार्ग है।
२. जो शिष्य नाम, कीर्ति, सत्ता, धन और विषयवासना के पीछे दौड़ता है वह सदगुरू के चरणकमलों के प्रति सच्चा भक्तिभाव नहीं रख सकता।
३. शिक्षा का क्षेत्र बहुत ही विशाल है और ज्ञानप्राप्ति की संभावनाएँ अपार हैं। अतः गुरू की आवश्यकता अनिवार्य है।
४. तैत्तीरीय उपनिषद कहती हैः "अब, ज्ञान के विषय में बात करते हैं। आचार्य प्रथम स्वरूप हैं। शिष्य आखिरी स्वरूप है। ज्ञान इन दोनों के बीच की कड़ी है और उपदेश वह माध्यम है जो समन्वय कराता है। यह ज्ञान का क्षेत्र है।"
५. कठोपनिषद कहती हैः ''जिस आत्मा के विषय में भिन्न–भिन्न प्रकार से उपदेश दिया जाता है उस आत्मा विषयक जब निम्न स्तर की बुद्धिवाले व्यक्ति के द्वारा उपदेश दिया जाता है तब सरलता से समझ में नहीं आता। किन्तु जब वही आत्मा के विषय में ब्रह्मनिष्ठ गुरू उपदेश देते हैं तब बिल्कुल सन्देह नहीं रहता, अर्थात् भली प्रकार समझ में आ जाता है। आत्मा तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। केवल बौद्धिक कसरत से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल गुरू कृपा से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।''

गुरू शिष्य का सम्बन्ध

६. शिष्य को आचार्य के घर रहना चाहिए, बारह वर्ष तक सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा कठिन तप करना चाहिए। उसे गुरू की सेवा करना चाहिए तथा उनके मार्गदर्शन में पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए।
७. जो शिष्य को शिक्षा दे सकें और स्वयं जो शिक्षा दें उसको अपने आचरण में भी ला सकें वे ही गुरू हो सकते हैं।
८. मनुष्य को जिस किसी को भी गुरू के रूप में स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। एक बार गुरू के रूप में स्वीकार कर लेने के बाद किसी भी परिस्थिति में उनका त्याग नहीं करना चाहिए।
९. आत्म–साक्षात्कारी गुरू इस जमाने में सचमुच बहुत दुर्लभ हैं।
१०. सचमुच आध्यात्मिक विकास कर लेने वाले व्यक्ति जब तक परमात्मा की आज्ञा नहीं होती तब तक गुरू के रूप में फर्ज अपने सिर पर नहीं लेते।
११. जब योग्य साधक आध्यात्मिक पथ की दीक्षा लेने के लिए गुरू की खोज में जाता है तब उसके समक्ष ईश्वर गुरू के स्वरूप में दिखते हैं और उसे दीक्षा देते हैं।
१२. जो मुक्तात्मा गुरू हैं वे एक निराली जाग्रत अवस्था में रहते हैं जिसे तुरीयावस्था कहा जाता है। जो शिष्य गुरू के साथ एकता स्थापित करना चाहता हो उसे संसार की क्षणभंगुर चीजों के प्रति सम्पूर्ण वैराग्य का गुण विकसित करना चाहिए।

१. उच्चतर ज्ञान का मूल

१३. जो उच्चतर ज्ञान चित्त में से निष्पन्न होता है वह विचारों के रूप में नहीं अपितु शक्ति के रूप में होता है। वह ज्ञान गुरू को शिष्य के प्रति सीधे–सीधे संक्रमित करते है। ऐसे गुरू चित्शक्ति के साथ एकरूप होते हैं।
१४. ईश्वर–साक्षात्कार केवल स्वप्रयत्न से ही नहीं हो सकता। उसके लिए गुरू कृपा अत्यन्त आवश्यक है।
१५. शिष्य जब उच्चतर दीक्षा के लिए योग्य बनता है तब गुरू स्वयं ही उसे योग के रहस्यों की दीक्षा देते हैं।
१६. गुरूश्रद्धा पर्वतों को हिला सकती है। गुरूकृपा चमत्कार कर सकती है। हे वीर ! निःसंशय बनकर आगे बढ़ो।
१७. परमात्मा के साथ एकरूप बने हुए महान आध्यात्मिक पुरूष की जो सेवा करता है वह संसार के कीचड़ को पार कर जाता है।
१८. अगर आप सांसारिक मनोवृत्तिवाले लोगों की सेवा करेंगे तो आपको सांसारिक लोगों के गुण मिलेंगे। उससे विपरीत, जो सदैव परम सुख में निमग्न रहते हैं, जो सर्व गुणों के धाम हैं, जो साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं ऐसे गुरू के चरणकमलों की सेवा करेंगे तो आपको उनके गुण प्राप्त होंगे। अतः उनकी सेवा करो... बस, सेवा करो।

आचरण के सिद्धान्त

१९. अपने गुरू की सेवा करने वाले शिष्य को दूसरों के समक्ष लज्जित नहीं होना चाहिए, संकोच महसूस नहीं करना चाहिए।
२०. गुरू ने भोजन न किया हो तब तक आप कभी भोजन मत करें।
२१. गुरू का उच्छिष्ट प्रसाद (गुरू की थाली में बचा हुआ प्रसाद) जो ग्रहण करता है वह गुरू के साथ एकत्व का अनुभव करेगा। गुरूकृपा से वह उनके साथ एकरूप हो जायेगा।
२२. जब गुरू निद्राधीन हों या आराम करते हों तब अनिवार्य परिस्थितियों में भी उन्हें जगाना नहीं चाहिए, विघ्न नहीं डालना चाहिए।
२३. गुरू के साथ हँसी मजाक कभी मत करें। अगर ऐसा करेंगे तो धीरे–धीरे उनके प्रति आदर कम होता जायगा और आपको लगेगा कि मैं उनके बराबर हो गया हूँ।
२४. बनावटी गुरू से सावधान रहना। उन्होंने अपनी बरबादी तो की है लेकिन वे आपकी भी बरबादी कर देंगे।
२५. गुरू होना अच्छी बात है लेकिन गुरू का त्याग करना बहुत खराब बात है।
२६. गुरू होना अच्छी बात है और गहरी श्रद्धा से उनकी सेवा करना यह उससे भी अच्छी बात है।
२७. गुरू की आज्ञा का पालन करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के बराबर है।
२८. अनेक गुरू करना खराब बात है। गुरू से धोखा करना और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना बहुत खराब बात है।
२९. गुरू की सेवा करने के लिये सदैव तत्पर रहो।
३०. गुरू की अथक सेवा करके उनकी कृपा प्राप्त करो।
३१. जिसने गुरू कृपा प्राप्त की है वही साधना का रहस्य जानता है।
३२. गुरू होना अच्छी बात है। उनकी आज्ञा का पालन करना उससे भी अधिक अच्छी बात है और उनके आशीर्वाद प्राप्त करना श्रेष्ठ है।

३३. जो अपने गुरू की सेवा करता है वही परम सत्य के सम्पर्क में आने की कला जानता है।
३४. जो मोह से मुक्त बनता है वह कभी भी गुरू का द्रोह नहीं करेगा।
३५. गुरू महाराज के जीवित होते हुए जो उनकी गद्दी पर बैठने की इच्छा करता है उसे सीधा नर्क का पासपोर्ट मिल जाता है। यमराज भी ऐसे आदमी से डरते रहते हैं कि शायद वह आदमी मेरी गद्दी भी छीनने का यत्न करेगा।
३६. गुरूपूर्णिमा के दिन जो अपने गुरू की पादपूजा करता है उसे सारे वर्ष के दौरान सारे कर्मों में सफलता मिलती है।
३७. गुरूभाई पर प्रेम रखना यह गुरूदेव के प्रति प्रेम रखने के बराबर है।
३८. गुरूभाई को सहाय करना यह गुरूदेव की सेवा करने के बराबर है।
३९. गुरू की सेवा करना माने आत्मोद्धार करना।
४०. गुरू की सेवा करना माँ–बाप की सेवा करना।
४१. किसी भी चीज में अन्धश्रद्धा होना यह अच्छी बात नहीं है किन्तु ईश्वर के साथ एकत्व स्थापित किये हुए गुरू के वचनों में अन्धश्रद्धा रखना यह मोक्ष का राजमार्ग है।
४२. आप कुछ ही समय में एक महान विद्वान बन सकते हैं किन्तु आसानी से सच्चे शिष्य नहीं बन सकते।

योग्य गुरू की खोज

४३. आजकल कई बनावटी गुरू तथा शिष्य दिखाई देते हैं। आपको गुरू की पसन्दगी करना हो तब ध्यान रखना।
४४. शिष्य का कर्त्तव्य है गुरू के पवित्र मुख से जो आज्ञाएँ निकलें उनका पालन करना।
४५. गुरू के निवास एवं आश्रम के आसपास के स्थान स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखो।
४६. गुरू और शिष्य के बीच प्रेमी और प्रेमिका जैसा सम्बन्ध है।
४७. कभी–कभी गुरू अपने शिष्य की कसौटी करें या उसे प्रलोभन में डालें तो शिष्य को गुरू के प्रति अपनी श्रद्धा के द्वारा उसका सामना करना चाहिए।
४८. शिष्य को कोई भी चीज गुरू से छिपाना नहीं चाहिए। उसे स्पष्टवक्ता और प्रामाणिक बनना चाहिए।
४९. रागद्वेष से मुक्त गुरू के चरणकमलों की धूलि बनना यह तो महान सौभाग्य है, दुर्लभ अधिकार है।
५०. परमात्मा के साथ एकत्व स्थापित किये हुए आचार्य के पवित्र चरणों की धूलि तो शिष्य के लिए अलौकिक अलंकार है।
५१. गुरूसेवा का एक भी दिन चूकना नहीं। किसी भी प्रकार के पंगु बहाने बनाना नहीं।
५२. जो अपने को गुरूचरण की धूलि मानता है ऐसा शिष्य धन्य है।
५३. जो शिष्य नम्र, सादा, आज्ञाकारी तथा गुरू के चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव रखनेवाला है उस पर गुरूकृपा उतरती है।
५४. गुरू के कार्य का एक साधन बनो।
५५. गुरू जब आपकी गलतियाँ बतावें तब केवल उनका कहा मानो, आपका कार्य उचित हैं ऐसा बचाव मत करो।
५६. जो गुरू विशेषज्ञ हों उनके मार्गदर्शन में आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि सीखो।

५७. जिसकी निद्रा तथा आहार आवश्यकता से अधिक है वह गुरू की रूचि के मुताबिक उनकी सेवा नहीं कर सकता।

गुरू के पदचिह्नों पर

५८. जो अधिक वाचाल है और शरीर की टीपटाप करना चाहता है वह गुरू की इच्छा के अनुसार सेवा नहीं कर सकता।
५९. हररोज भक्तिभाव एवं भक्ति से गुरू के चरणकमलों की पूजा करो।
६०. अगर अलौकिक भाव से अपने गुरू की सेवा करना चाहते हो तो स्त्रियों से एवं सांसारिक मनोवृत्तिवाले लोगों से हिलोमिलो नहीं।
६१. गुरू के आशीर्वाद का खजाना खोलने के लिए गुरू सेवा गुरूचाबी है।
६२. जहाँ गुरू हैं वहाँ ईश्वर हैं, यह बात सदैव याद रखो।
६३. जो गुरू की खोज करता है वह ईश्वर की खोज करता है। जो ईश्वर की खोज करता है उसे गुरू मिलते हैं।
६४. शिष्य को अपने गुरू के कदम–कदम का अनुसरण करना चाहिए।
६५. गुरू की पत्नी को अपनी माता समझकर उनको इस प्रकार मान देना चाहिए।
६६. अपने गुरू से क्षणभंगुर पार्थिव सुखों की याचना मत करना। अमरत्व के लिए याचना करो।
६७. अपने गुरू से सांसारिक आवश्यकताओं की भीख नहीं माँगना।
६८. सच्चे शिष्य के लिए आचार्य के चरणकमल ही एकमात्र आश्रय है।
६९. जो कोई अपने गुरू की भावपूर्वक, अहर्निश अथक सेवा करता है उसे काम, क्रोध और लोभ कभी सता नहीं सकते।

गुरू के चरणों में

७०. जो दैवी गुरू के चरणों में आश्रय लेता है वह गुरू की कृपा से आध्यात्मिक मार्ग में आने वाले तमाम विघ्नों को पार कर जाएगा।
७१. योग के लिए श्रेष्ठ एकान्त स्थान गुरू का निवास स्थान है।
७२. शिष्य के साथ गुरू रहते नहीं हों तो ऐसा एकान्त सच्चा एकान्त नहीं है। ऐसा एकान्त काम और तमस् का आश्रयस्थान बन जाता है।
७३. जिस शिष्य को अपने गुरू के प्रति भक्तिभाव है उसके लिये तो आदि से अन्त तक गुरू सेवा मीठे शहद जैसी बन जाती है।
७४. गुरू के पवित्र मुख से बहते हुए अमृत का जो पान करता है वह मनुष्य धन्य है।
७५. जो सम्पूर्ण भाव से अपने गुरू की अथक सेवा करता है उसे दुनियादारी के विचार नहीं आते। इस दुनिया में वह सबसे अधिक भाग्यवान है।
७६. बस, अपने गुरू की सेवा करो, सेवा करो, सेवा करो। गुरूभक्ति विकसित करने का यह राजमार्ग है।
७७. गुरू माने सच्चिदानंद परमात्मा।

गुरू की पूजा

७८. पूज्य आचार्य की सेवा जैसी हितकारी और आत्मोन्नति करने वाली और कोई सेवा नहीं है।

७९. सच्चा आराम दैवी गुरू की सेवा में ही निहित है। ऐसा दूसरा कोई सच्चा आराम नहीं है।

८०. गुरूकृपा से जीवन का मर्म समझ में आता है।

८१. किसी भी प्रकार के स्वार्थी हेतु के बिना आचार्य की पवित्र सेवा जीवन को निश्चित आकार देती है।

८२. वेदान्त के थोड़े बहुत पुस्तक स्वतंत्र रीति से पढ़ लेने के बाद यों कहना कि **'न गुरूः न शिष्यः'** यह सत्य के खोजी के लिए महान भूल है।

८३. कभी–कभी शिष्य के पापों को हर लेने से गुरू को शारीरिक पीड़ा भुगतनी पड़ती है। वास्तव में गुरू कोई भी शारीरिक रोग या पीड़ा नहीं भोगते, किन्तु बहुत भक्तिभाव और तत्परता से गुरू की सेवा करके हृदय को पवित्र बनाने के लिए शिष्य को प्राप्त एक विरल मौका होता है।

८४. पुण्यशाली आचार्य का उत्तम विचार शिष्य को पार्थिवता और इन्द्रियविषयक जीवन से ऊपर उठने में सहायरूप है।

८५. '**उप**' माने 'पास'। '**नि**' माने 'नीचे'। '**षद्**' माने 'बैठना'। '**उपनिषद्**' माने आचार्य के पास नीचे बैठना। शिष्यों का समूह ब्रह्म के सिद्धान्त का रहस्य जानने के लिए आचार्य के पास बैठता है।

रहस्य–विद्या का दान

८६. पवित्र शास्त्रों का गूढ़ रहस्य और प्राचीन सिद्धान्तों का अर्थ केवल पुस्तकें पढ़ने से या पाण्डित्यपूर्ण भाषण सुनने से समझ में नहीं आता। जो भाग्यशाली शिष्य आजीवन गुरू के साथ रहकर उनकी सेवा करते हैं और गुरू के प्रति आदर तथा भक्तिभाव रखते हैं उनको 'तत्त्वमसि', अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म?' आदि उपनिषदों के कथन अच्छी तरह समझ में आते हैं और उनके अर्थ का साक्षात्कार होता है।

८७. गुरूकृपा आत्मा का आन्तरदर्शन कराती है।

८८. अनेकबार की बिनती और कठिन कसौटी के बाद ही सदगुरू अपने विश्वसनीय शिष्य को उपनिषद की रहस्य विद्या प्रदान करते हैं।

८९. उपनिषद् की परम्परा के मुताबिक आचार्य ब्रह्म–विद्या का रहस्य अपने योग्य पुत्र अथवा तो विश्वसनीय शिष्य को ही दे सकते हैं, और किसी को भी नहीं। फिर वह चाहे कोई भी हो और चारों ओर से पानी से आवृत्त, वैभव से समृद्ध सारी पृथ्वी गुरू को देने के लिए तैयार हो।

९०. पावनकारी गुरू को दण्डवत् प्रणाम करने के बाद उनकी ओर पीठ करके शिष्य को जाना नहीं चाहिए।

९१. आचार्य यदि वेदान्त को सच्चा अर्थ जानते हों और जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को वह किस प्रकार लागू किया जा सकता है वह समझते हों तो एक बालक को भी वे वेदान्त सिखा सकते हैं।

९२. जो व्यक्ति पैसे के पीछे दौड़ता है वह गुरू की सम्पत्ति चुराने में भी झिझकता नहीं है।

९३. गुरू की सम्पत्ति के प्रति लोलुप मत बनो।

९४. जो मुक्तात्मा पावनकारी गुरू हैं वे शान्ति और आनन्दस्वरूप हैं। वे समदृष्टिवाले और स्थितप्रज्ञ हैं। उनके लिए मान–अपमान, स्तुति–निन्दा, सुख–दुःख समान है। वे काम, क्रोध, लोभ, मद और मत्सर से मुक्त हैं। उनको रूचि अरूचि नहीं होती। उन्हें कोई आसक्ति नहीं होती। वे बालक जैसे निर्दोष, फिर भी ज्ञान के भण्डार हैं। वे अपनी उपस्थिति मात्र से या कृपादृष्टि से ही शिष्य के संशय दूर करते हैं।
९५. गरीब और बीमार की सुश्रूषा करना, गुरू और माँ–बाप की सेवा करना, दया के उत्तम कार्य करना, गुरूकृपा से आत्मज्ञान पाना..... यह सब सचमुच सर्वश्रेष्ठ पुण्य है।
९६. गुरू की निजी सेवा जैसी पावनकारी और कोई चीज नहीं है।
९७. मोक्ष के श्रमजनक मार्ग में गुरूकृपा सचमुच विश्वसनीय साथी है।

आत्मविजय का शस्त्र

९८. केवल गुरू की शरण में जाने से ही जीवन जीता जा सकता है।
९९. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से मन को संयम में लाने से कामवासना की शान्ति हो सकती है।
१००. गुरूसेवा आपको बिल्कुल स्वस्थ और तन्दुरूस्त रखती है।
१०१. गुरूभक्तियोग का अभ्यास आपको अमाप एवं अनहद आनन्द देता है।
१०२. गुरूसेवा अद्वैतभाव या एकरूपता पैदा करती है।
१०३. गुरूभक्तियोग साधक को चिरायु और अनन्त सुख देता है।
१०४. गुरूसेवा के बिना वेदान्त का अभ्यास व्यक्ति को तोते जैसा वेदान्ती बनाता है। अतः अपने पूज्य आचार्य की सेवा करो, सेवा करो, सेवा करो।
१०५. अपने दैनिक जीवन में मार्गदर्शन के लिए प्रत्येक क्षण पूज्य गुरू की प्रार्थना करो।
१०६. जो प्रार्थना शिष्य के निखालिस, पवित्र हृदय से निकलती है उसे गुरू की ओर से तत्काल प्रत्युत्तर मिलता है।
१०७. जो साधु–संत पूज्य गुरू हैं उनके पास श्रद्धा, भक्ति और नम्रतापूर्वक जाओ। ज्ञानरूपी औषध लो। सम्पूर्ण आज्ञाकारिता पथ्य है। तभी अज्ञानरूपी रोग पूर्णतः निर्मूल होगा और आप सर्वोच्च सुख का अनुभव कर सकेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः ९ – गुरूभक्ति की नींव

श्रद्धा का महत्त्व

१. गुरू में श्रद्धा गुरूभक्तियोग की सीढ़ी का प्रथम सोपान है।
२. गुरू में श्रद्धा दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य को आशा एवं प्रेरणा देती है।
३. गुरू में सम्पूर्ण विश्वास रखो। तमाम भय, चिन्ता और जंजाल का त्याग कर दो। बिल्कुल चिन्तामुक्त रहो।
४. "गुरूवचन में श्रद्धा अखूट बल, शक्ति एवं सत्ता देती है। संशय मत कर। हे शिष्य आगे बढ़।"

५. ज्ञानीजनों के समागम से तथा पुराण और पवित्र शास्त्रों के अध्ययन से गुरू पर श्रद्धा दृढ़ करो।
६. गुरू के उपदेशों में गहरी श्रद्धा रखो। सदगुरू के स्वभाव और महिमा को स्पष्ट रीति से समझो। गुरू की सेवा करके दिव्य जीवन बिताओ। तभी ईश्वर की जीवन्त मूर्ति के समान सदगुरू के पवित्र चरणों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर सकोगे।
७. गुरू को विघ्नरूप बनने से तो मरना बेहतर है।
८. गुरू पर भक्तिभाव सब हीन वृत्तियों और आवेगों को दबा देता है तथा सब अवरोधों को दूर करता है।
९. गुरूभक्तियोग में गुरू के प्रति भक्तिभाव सबसे महान चीज है।

भक्ति के स्वरूप

१०. गुरू की अचल भक्ति ईश्वर–साक्षात्कार करने के लिए बहुत असरकारक पद्धति मानी जाती है।
११. गुरू की महिमा का सतत स्मरण और उनके दिव्य सन्देश को सर्वत्र फैलाना यह गुरू के प्रति सच्चा भक्तिभाव है।
१२. आचार्य के पवित्र चरणों की भक्ति फूल है और उनके आशीर्वाद अमर फल है।
१३. जीवन का ध्येय है– परिणाम में दुःख देनेवाली कुसंगति का त्याग करना और अमरत्व देने वाले पवित्र आचार्य के चरणकमलों की सेवा करना।
१४. साधक जब इहलोक और परलोक में चिरंतन सुख देने वाले गुरूभक्तियोग का आश्रय लेता है तभी उसका सच्चा जीवन शुरू होता है।
१५. "जन्म–मृत्यु, सुख–दुःख, हर्ष–शोक के अविरत चक्र से मुक्ति नहीं होगी क्या ? हे शिष्य ! सावधान होकर सुन। उसके लिए एक निश्चित उपाय है। नाशवंत इन्द्रियविषयक पदार्थों में से अपना मन हटा ले और इन द्वन्द्वों से पार ले जाने वाले गुरूभक्तियोग का आश्रय ले।"
१६. सच्चा एवं स्थायी सुख बाहर के नाशवंत पदार्थों से नहीं अपितु गुरूशरणयोग का आश्रय लेने से मिल सकता है।
१७. गुरूसेवायोग, गुरूशरणयोग आदि गुरूभक्तियोग के समानार्थी शब्द हैं। वे सब एक ही हैं।
१८. गुरूभक्तियोग का अभ्यास माने गुरू के प्रति गहरा पवित्र प्रेम।
१९. आचार्य के पावनकारी चरणकमलों के प्रति पवित्र प्रेम धीरे–धीरे विकसित करना चाहिए। उसके लिए कोई छोटा मार्ग नहीं है।
२०. गुरूभक्तियोग सब विज्ञानों में श्रेष्ठ विज्ञान है।
२१. सच्चे शिष्य के लिए पावनकारी आचार्य के चरणकमल ध्यान का मुख्य विषय हैं।
२२. गुरूभक्तियोग सब योगों का राजा है।
२३. गुरूभक्ति के अभ्यास से जब मन की बिखरी हुई शक्ति की किरणें एकत्रित होती हैं तब यह रोग चमत्कार कर देता है।
२४. सब महात्माओं तथा आचार्यों ने गुरूभक्तियोग के अभ्यास द्वारा महान कार्य किये हैं। जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथजी गुरूभक्ति से महान हो गये और उनका शिष्य पूरणपोड़ा अविद्वान होते हुए गुरू का अपूर्ण ग्रन्थ पूर्ण कर सका। शंकराचार्य के शिष्य तोटकाचार्य ने गुरूभक्ति से चमत्कार कर दिखाया। एकलव्य और सहजोबाई गुरू–भक्तियोग के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। और भी असंख्य गुरूभक्तों ने गुरू के दैवी चिन्तन से, मधुर स्मृति से अथवा गुरू के दैवी कार्य में सेवा

करके हृदय की ऐसी शीतलता, मन की मधुरता महसूस की है कि किताबें पढ़कर कथा करने वाले या सुनने वाले जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी है गुरूभक्ति की महिमा !

२५. गुरूभक्तियोग की 'फिलाँसफी' (दर्शन) के मुताबिक गुरू और ईश्वर एक और अभिन्न ही हैं। अतः गुरू को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना अनिवार्य है।

२६. गुरूभक्तियोग में अन्य सब योग समाविष्ट हो जाते हैं। गुरूभक्तियोग का आश्रय लिए बिना कोई भी व्यक्ति अन्य कठिन योगों का अभ्यास नहीं कर सकता।

२७. गुरूभक्तियोगकी 'फिलासफी' आचार्य की उपासना के द्वारा गुरूकृपा करने के लिए मुख्य दृष्टान्त आगे रखती है।

२८. गुरूभक्तियोग वेद और उपनिषदों के समय जितना प्राचीन है।

२९. हृदय की पवित्रता प्राप्त करने के लिए ध्यान के लिए और आत्म–साक्षात्कार के लिए गुरूभक्तियोग की 'फिलासफी' गुरूसेवा पर काफी जोर देती है।

३०. जो अपने गुरू की आरोग्यता के लिए लगा रहता है वह मनुष्य धन्य है।

१. कृपा का कार्य

३१. गुरूकृपा एक परिवर्तनकारी बल है।

३२. जहाँ गुरूकृपा है वहाँ विजय है।

३३. आचार्य के पावन चरणों की पूजा करने में और उनके दिव्य आदेशों का पालन करने में ही सच्चा जीवन निहित है।

३४. गुरूभक्तियोग के निरन्तर अभ्यास द्वारा मन की चंचल वृत्ति को निर्मूल करो।

३५. इस लोक के आपके जीवन का परम ध्येय और लक्ष्य अमरत्व प्रदान करने वाली गुरूकृपा प्राप्त करना है।

३६. गुरू की सेवा करते समय श्रद्धा, आज्ञापालन और आत्मसमर्पण, इन तीनों को याद रखो।

३७. गुरूसेवा के आदर्श को अपने हृदय में गहरा उतर जाने दो।

३८. कुसंग में से अपने मन को अलग करो और जो पूर्णता के प्रतीक हैं, सत्यवेत्ता हैं, सार्वत्रिक प्रेम के केन्द्र और मनुष्य जाति के नम्र सेवक हैं ऐसे गुरू के पावन चरणों में अपने मन को लगा दो।

३९. ज्ञानी गुरू की सहायता से सतत आध्यात्मिक अभ्यास जारी रखो।

४०. सच्चा साधक गुरूभक्तियोग के अभ्यास में रत रहता है।

४१. हो सके उतनी मात्रा में आचार्य के प्रति भक्तिभाव जगाओ। तभी उनके सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद का सुख भोग सकोगे।

४२. पावनकारी आचार्य के पवित्र चरणों को निहारते निहारते सच्चे आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती।

४३. एक भी क्षण गँवाओ नहीं। जीवन थोड़ा है। समय जल्दी से सरक जाता है। मृत्यु कब आ जाय, कोई पता नहीं। उठो, जागो, तत्परतापूर्वक आचार्य की सेवा में लग जाओ।

४४. आचार्य की सेवा में डूब जाओ।

४५. गुरू पर श्रद्धा और उनके ज्ञान के वचनों से सज्ज बनो।

२. आध्यात्मिक मार्ग और जीवन

४६. आध्यात्मिक मार्ग तीक्ष्ण धारवाली तलवार का मार्ग है। जिनको इस मार्ग का अनुभव है ऐसे गुरू की अनिवार्य आवश्यकता है।

४७. आपके सब अहंभाव का त्याग करो और गुरू के चरणकमलों में अपने आपको सौंप दो।
४८. गुरू आपको मार्ग दिखाएँगे और प्रेरणा देंगे। मार्ग में आपको स्वयं ही चलना होगा।
४९. जीवन अल्प है। समय जल्दी से सरक रहा है। उठो, जागो, आचार्य के पावन चरणों में पहुँच जाओ।
५०. जीवन थोड़ा है। मृत्यु कब आयेगी, निश्चित नहीं है। अतः गंभीरता से गुरू सेवा में लग जाओ।
५१. हररोज आध्यात्मिक दैनिकी लिखो। उसमें अपनी प्रगति और निष्फलता की सच्ची नोट लिखो और हर महीने अपने गुरू के पास भेजो।
५२. अपने गुरू से ऐसी शिकायत नहीं करना कि आपके अधिक काम के कारण साधना के लिए समय नहीं बचता। नींद के तथा गपशप लगाने के समय में कटौती करो और कम खाओ। तो आपको साधना के लिए काफी समय मिलेगा। आचार्य की सेवा ही सर्वोच्च साधना है।
५३. गुरू की सेवा और गुरू के ही विचारों से दुनिया विषयक विचारों को दूर रखो।
५४. अपने आध्यात्मिक आचार्य के आगे अपनी शक्ति की बड़ाई नहीं करना या प्रमाण नहीं देना। नम्र और सादे बनो। इससे आध्यात्मिक मार्ग में शीघ्र प्रगति कर सकोगे।
५५. आचार्य के कार्यों की निन्दा, आलोचना एवं दोषदर्शन छोड़ देना। उनके प्रत्याघातों से सावधान रहना।
५६. आचार्य की सेवा करते समय चाहे कितने भी दुःख आ जाएँ, उन्हें सह लेने की तैयारी रखना।
५७. प्रेम एवं अनुकंपा की साक्षात् मूर्तिरूप अपने गुरू के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करके उन्हें स्वीकार करो।
५८. आपके गुरू आपसे जितनी अपेक्षा रखें उससे भी अधिक सेवा करो।
५९. गुरू के सिवाय और किसी से गाढ़ सम्बन्ध मत रखो। और लोगों से कम हिलोमिलो।
६०. गुरू का प्रेम, उनको दयादृष्टि शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करके शुद्धीकरण कर सकती है।

शिष्य की भावना

६१. गुरू की महिमा को पहचानकर उसका अनुभव करो और उनका प्रेम–सन्देश मनुष्य जाति में फैलाओ। ऐसा करने से गुरू की कृपा आप पर उतरेगी।
६२. आचार्य के प्रति कर्त्तव्यों में से कभी भी विचलित मत हो।
६३. श्रद्धा, विनय एवं भक्तिभावपूर्वक गुरू को खूब मूल्यवान भेंट देनी चाहिए।
६४. गुरू को श्रेष्ठ दान दो। गुरू को लापरवाही में दी हुई भेंट भी शिष्य को वापस नहीं लेना चाहिए।
६५. गुरू की सेवा करते समय अपने भीतर के हेतुओं पर निगरानी रखो। किसी भी प्रकार के फल, नाम, कीर्ति, सत्ता, धन आदि की आशा के बिना ही गुरू की सेवा करनी चाहिए।
६६. आप अपने गुरू के साथ व्यवहार करें तब सच्चाई एवं निष्ठा रखना।
६७. गुरूभक्तियोग में ईमानदारी के बिना आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।
६८. जिस प्रकार चातक पक्षी केवल वर्षा के पानी की आशा में ही जीता है उसी प्रकार केवल गुरू कृपा की आशा से ही शिष्य आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ सकता है।
६९. गुरू के प्रति आतिथ्यभाव दिखाना यह सर्वोच्च यज्ञ है। गुरूसेवा रूपी यज्ञ के पास अश्वमेध और अन्य महान यज्ञों की भी कोई कीमत नहीं है।

ईश्वर–साक्षात्कार का सबसे सरल मार्ग

७०. गुरूचरण में आश्रय लेकर प्रेरणा पाओ।

७१. प्रेम यह गुरू के चरणकमलों के साथ शिष्यों के हृदय को बाँधने वाली सुवर्ण की कड़ी है।

७२. ईश्वर का अनुभव करने के लिए गुरूभक्तियोग सबसे सरल, सचोट, त्वरित और सलामत मार्ग है। आप सब गुरूभक्तियोग के अभ्यास के इसी जन्म में ईश्वर–अनुभव प्राप्त करें।

७३. गुरू के नाम का शरण लो। सदैव गुरू का नाम रटन करो। कलियुग में गुरू की महिमा गाओ और उनका ध्यान करो। ईश्वर–साक्षात्कार के लिए यह श्रेष्ठ और सरल मार्ग है।

७४. मोक्ष अथवा सनातन सुख के द्वार खोलने की गुरूचाबी गुरूभक्ति है।

७५. जीवन मधुर फूल है, जिसमें गुरूभक्ति मीठा शहद है।

७६. गुरू के चरणों की भक्त सच्चे शिष्य के लिए श्वासोच्छवास के बराबर है।

७७. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से अमरत्व, सर्वोत्तम शान्ति और शाश्वत आनन्द प्राप्त होता है।

७८. गुरू प्रेम और करूणा की मूर्ति है। आपको अगर उनके आशीर्वाद प्राप्त करने हों तो आपको भी प्रेम और करूणा की मूर्ति बनना चाहिए।

७९. गुरू के प्रति भक्ति में शिष्य के ह्रदय में स्वार्थ की एक बून्द भी नहीं होना चाहिए।

८०. गुरू के प्रति भक्ति अखूट और स्थायी होनी चाहिए।

८१. गुरू सेवा के लिए पूरे हृदय की इच्छा ही गुरूभक्ति का सार है।

८२. शरीर या चमड़ी का प्रेम वासना कहलाती है, जबकि गुरू के प्रति प्रेम भक्ति कहलाता है। ऐसा प्रेम, प्रेम के खातिर होता है।

८३. गुरू के प्रति भक्तिभाव ईश्वर के प्रति भक्तिभाव का माध्यम है।

८४. जप, कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान, साधुसेवा, अध्ययन और साधुसमागम के द्वारा अपने हृदयकुँज में शुद्ध गुरूभक्ति का फूल विकसित करो।

८५. गुरू की सेवा आपके जीवन का एकमात्र लक्ष्य और ध्येय होना चाहिए।

८६. स्वयं की अपेक्षा गुरू पर अधिक प्रेम रखो।

विश्वप्रेम का विकास

८७. अपने शत्रुओं पर प्रेम रखो। अपने से निम्न कोटि के लोगों पर प्रेम रखो। प्राणियों के प्रति प्रेम रखो। अपने गुरू पर प्रेम रखो। सब साधु संतों पर प्रेम रखो।

८८. गुरू की निःस्वार्थ सेवा, महात्माओं का सत्संग, प्रार्थना और गुरूमंत्र के जप द्वारा धीरे–धीरे विश्वप्रेम का विकास करो।

८९. अन्य लोगों ने जो चीज महाप्रयत्न से सिद्ध की हो वह चीज आप गुरू कृपा से प्राप्त कर सकते हैं।

९०. धन्य है विनम्र लोगों को, क्योंकि उन्हें तुरन्त गुरू कृपा मिल जाती है। जिन्होंने गुरू की शरण ली है ऐसे पवित्र आत्माओं को धन्यवाद है, क्योंकि उनको परम सुख अवश्य प्राप्त होता है।

९१. गुरूकृपा की प्राप्ति के लिए नम्रता राजमार्ग है।

९२. आध्यात्मिक आचार्य अथवा सच्चे महापुरूष की प्रथम कसौटी उनकी नम्रता है। यह उनका मूल सदगुण है।

गुरू के साथ तादात्म्य

९३. सुई के छेद से ऊँट गुजर सके इससे भी अत्यन्त अधिक मुश्किल बात है गुरू कृपा के बिना ईश्वरकृपा प्राप्त करना।

९४. जैसे पानी को दूध में डाला जाए तो वह दूध में मिल जाता है और अपना व्यक्तित्व गँवा देता है वैसे सच्चे शिष्य को चाहिए कि वह अपने आपको सम्पूर्णतः गुरू को सौंप दे, उनके साथ एकरूप हो जाय।

९५. जैसे छोटे छोटे झरने एवं नदियाँ महान पवित्र नदी गंगा से मिल जाने के कारण खुद भी पवित्र होकर पूजे जाते हैं और अन्तिम लक्ष्य समुद्र को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सच्चा शिष्य गुरू के पवित्र चरणों का आश्रय लेकर तथा गुरू के साथ एकरूप बनकर शाश्वत सुख को प्राप्त होता है।

९६. बालक बोलना–चलना क्या एक ही दिन में सीखता है ? बोलना–चलना सीखने के लिए बालक को आवश्यक ऐसे माँ–बाप के लम्बे सहवास एवं योग्य निगरानी तथा रस की आवश्यकता नहीं पड़ती क्या ? पड़ती ही है। इसी प्रकार सच्चे और ईमानदार शिष्य को गुरू के साथ लम्बे समय तक रहना चाहिए और तन मन से सब सेवा करनी चाहिए। इस पूरे समय के दौरान सर्वोच्च विद्या सीखने के लिए हृदयपूर्वक ध्यान देना चाहिए और उसमें रस लेना चाहिए। इस प्रकार उसे परम ज्ञान प्राप्त होगा, और किसी प्रकार से नहीं।

१. सब वरदान देने वाले

९७. कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि माँगने वाले को उसका मनोवांछित वरदान अवश्य देते ही हैं, इसी प्रकार गुरू भी माँगने वाले को इष्ट वस्तु अवश्य देते हैं। अतः सच्चा शिष्य तो केवल मोक्ष प्राप्त करने के लिए उपनिषद् की महाविद्या ही माँगता है।

९८. जिस प्रकार बालक जब धीरे धीरे कदम रखता है और स्वतंत्र रीति से चलने की कोशिश करता है तब कभी कभी गिर पड़ता है और खड़ा होता है। माँ की सहायता की आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता माँगता है। इसी प्रकार साधना के प्रारंभ के स्तरों में शिष्य को करूणामय गुरू की सहायता एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। अतः उसे वह माँगना चाहिए।

९९. सच्चे शिष्य को मोक्ष के लिए तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए तथा संभव हों उतनी तमाम रीतियों से वह आकांक्षा प्रकट करनी चाहिए, तभी उसकी इच्छा की पूर्ति करने में गुरू उसे सहायभूत हो सकते हैं। इस आकांक्षा को प्रयत्न कह सकते हैं और गुरू की करूणामय सहाय को माता की वात्साल्मय कृपा कह सकते हैं।

१००. सुन्दर ढंग से निर्मित मूर्ति के लिए दो चीजें आवश्यक हैं– एक है अखण्ड, कमीरहित अच्छा संगमरमर का टुकड़ा और दूसरी चीज, कुशल शिल्पी। संगमरमर का टुकड़ा शिल्पी के हाथ में रहना अनिवार्य है जिससे छीनी के द्वारा उसे कुरेदकर सुन्दर मूर्ति बनाया जाये। इसी प्रकार शिष्य को भी चाहिए की वह अपने आपको स्वच्छ और शुद्ध करके बिल्कुल क्षतिरहित संगमरमर के टुकड़े जैसा बनाए और गुरू के कुशल मार्गदर्शन में रख दे, जिससे गुरू छीनी से उसे कुरेदकर प्रभु की दिव्य मूर्ति में परिवर्तित कर सकें।

१०१. जैसे सूर्योदय होते ही तमाम अन्धकार का तुरन्त नाश होता है वैसे ही गुरूकृपा उतरते ही शिष्य के मन में आवरण और अविद्या का तुरन्त नाश हो जाता है।

१०२. जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणों से जला हुआ मनुष्य वृक्ष की शीतल छाया में और दिन भर की गर्मी के बाद शीतल चाँदनी में असीम आनन्द की अनुभूति करता है उसी प्रकार संसार की प्रखर किरणों से जला हुआ और शान्ति के लिए व्याकुल बना हुआ मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ गुरू के चरणों में इच्छित शान्ति और आनन्द की अनुभूति करता है।

१०३. जिस प्रकार चातक पक्षी लम्बे समय तक इन्तजार करने के बाद वर्षा के केवल एक ही जलबिन्दू से अपनी प्यास बुझाता है उसी प्रकार सच्चे शिष्य को अपने गुरू की सेवा करनी चाहिए और उपदेश–वचन का इन्तजार करना चाहिए। इससे उसकी तमाम व्यथाएँ शान्त होंगी और वह सदा के लिए मुक्त हो जाएगा।

१०४. जैसे अग्नि का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके निकट आनेवाली प्रत्येक वस्तु को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही जो मनुष्य कृपालु गुरू की प्राप्ति कर लेता है उसके किसी भी गुण दोषों को देखे बिना ब्रह्मनिष्ठ गुरू की कृपा उसके तमाम पापों को जलाकर भस्म कर देती है।

आध्यात्मिक प्रवृत्ति की आवश्यकता

१०५. जो कोई मनुष्य दुःखों से पार होकर सुख एवं आनन्द प्राप्त करना चाहता हो उसे सच्चे अन्तःकरण से गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना चाहिए।

१०६. गुरू के पवित्र चरणों के प्रति भक्तिभाव सर्वोत्तम गुण है। इस गुण को तत्परता एवं परिश्रमपूर्वक विकसित किया जाए तो इस संसार के दुःख और अज्ञान के कीचड़ से मुक्त होकर शिष्य अखूट आनन्द और परम सुख के स्वर्ग को प्राप्त करता है।

१०७. प्रारंभ में तरंग के रूप में दिखने वाली विषय वृत्तियाँ कुसंग के कारण महासागर का रूप धारण कर लेती है। अतः कुसंग का त्याग करके आचार्य के जीवनरक्षक चरणों का आश्रय लो।

१०८. अगर आप गुरूसेवा में रममाण रहते हैं तो आप चिन्ताओं को जीत सकते हैं। सब चिन्ताओं का यह अचूक मारण है।

१०९. उत्तम शिष्य को अपने गुरू पर किसी भी परिस्थिति में सन्देह नहीं लाना चाहिए या उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

११०. आदरणीय गुरू के पवित्र चरणों में साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम करने में लज्जित होना, यह गुरूभक्तियोग के अभ्यास में बड़ा अवरोध है।

१११. स्वावलम्बन, आत्मन्यायीपन की भावना, मिथ्याभिमान, आत्माभिमान, अपनी बात ही सत्य है ऐसा मानना, आलस्य, हठाग्रह, कूथली, कुसंग, बेईमानी, उद्दण्डता, काम, क्रोध, लोभ और 'मैं' पना.... ये चीजें गुरूभक्तियोग के मार्ग में महान भयस्थान हैं।

११२. कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग, ज्ञानयोग आदि सब योगों की नींव गुरूभक्तियोग है। जो शिष्य मानता है कि मैं सब कुछ जानता हूँ कि वह 'मैं' पने की भावना के कारण अपने गुरू से कुछ भी नहीं सीख सकेगा।

११३. 'मैं खुद सच्चा हूँ ।' ऐसा गुरू के समक्ष दिखाना यह शिष्य के लिए बहुत ही खतरनाक आदत है।

११४. आप जब गुरू की सेवा करते हों तब नम्र, मधुरभाषी, मृदु और विवेकी बनो। इससे गुरू का हृदय जीत सकोगे। गुरू के समक्ष वाणी या वर्तन में कभी उद्दण्डता मत दिखाओ।

११५. मोटी बुद्धि का विद्यार्थी गुरूभक्तियोग के अभ्यास में किसी भी प्रकार की ठोस प्रगति नहीं कर सकता।

११६. शिष्य को आदरणीय आचार्य के जीवन की उज्जवल बातें ही देखनी चाहिए।
११७. मन में अगर गुरू के विषय में कुविचार आये तो स्वयं ही अपने आप को दण्ड दो।
११८. आपके लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि गुरूभक्तियोग के मार्ग में अन्तःकरणपूर्वक प्रामाणिक प्रयत्न करना है।
११९. अपना गुरूमंत्र अथवा गुरू का पवित्र नाम हररोज एक घण्टे तक स्वच्छ नोटबुक में लिखो।
१२०. चलते हुए, खाते हुए, कार्यालय में काम करते हुए भी सदैव अपने गुरूमंत्र का जप करते रहो।

गुरू का उन्नतिकारक सान्निध्य

१२१. महान गुरू में स्थित चमत्कारिक आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा शिष्य में जो अदभुत परिवर्तन किया जाता है उस उपकार के महान ऋण का पूरा वर्णन करने की शक्ति वाणी में नहीं है।
१२२. 'सदगुरू साक्षात् ईश्वर हैं' ऐसा जो कहा गया है वह सत्य ही है। उनकी महानता शब्दातीत है।
१२३. गुरू का सान्निध्य प्रबल आध्यात्मिक स्पन्दनों के द्वारा शिष्य को ऊँची भूमिका पर ले जाता है और उसे प्रेरणा देता है। गुरू की महिमा शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करने में निहित है।
१२४. सदगुरू के पूज्य चरणों में आश्रय लेना ही सच्चा जीवन है, जीवन जीने की सही रीति है।
१२५. गुरू की शरणागति की स्वीकार करना यही आत्मसाक्षात्कार का मार्ग है।
१२६. गुरू में अविचल श्रद्धा न हो तब तक किसी को भी परम सुख भोगने को नहीं मिलता।
१२७. हमें अयोग्य लगता हो फिर भी गुरू जो करते हैं वह योग्य ही है।
१२८. गुरू के उपदेश में अविचल और अविरत श्रद्धा सच्ची गुरूभक्ति का मूल है।
१२९. गुरू सदैव अपने शिष्य के हृदय में बसते हैं।
१३०. कबीर जी कहते हैं– "गुरू और गोविन्द दोनों मेरे समक्ष खड़े हैं, तो मैं किसको प्रणाम करूँ ? धन्य हैं वे गुरूदेव जिन्होंने मुझे गोविन्द के दर्शन करवाये !"
१३१. केवल गुरू ही अपने योग्य शिष्य को दिव्य प्रकाश दिखा सकते हैं।
१३२. गुरू अपने शिष्य को 'असत्' में से 'सत्' में 'मृत्यु' में से 'अमरत्व' में, 'अन्धकार' में से 'प्रकाश' में और 'भौतिक' में से 'आध्यात्मिक' में ले जाते हैं।

जगहितकारी गुरू

१३३. सच्चे गुरू शिष्य का प्रारब्ध बदल सकते हैं।
१३४. सदगुरू पैगम्बर और देवदूत है, विश्व के मित्र और जगत के लिए कल्याणमय हैं, पीड़ित मानवजाति के ध्रुवतारक हैं।
१३५. सच्चे गुरू की सेवा करने से काल का शस्त्र बुट्ठा बन जाता है। गुरू के ज्ञान के पवित्र शब्द शिष्य के हृदय में प्रवेश करते हैं। गुरूकृपा के बिना बन्धन से मुक्ति नहीं है।
१३६. जो गुरूभक्तिमार्ग से विमुख बना है वह मृत्यु, अन्धकार और अज्ञान के भँवर में घूमता रहता है।
१३७. स्त्री एवं पुरूष अपनी आनुवंशिक शक्ति के मुताबिक मानवता के पथ का अनुसरण करने की कोशिश कर सकते हैं उनको महान गुरू का उपदेश सूर्य की प्रखर किरण की तरह जगत के भ्रांतिरूपी अन्धकार को विदीर्ण करके प्रकाशित करता है।
१३८. गुरूकृपा से ही मनुष्य को जीवन का सच्चा उद्देश्य समझ में आता है और आत्म–साक्षात्कार करने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होती है।

१३९. शिष्य के हृदय के तमाम दुर्गुणरूपी रोगों का सबसे अधिक असरकारक प्रतिरोधक एवं सार्वत्रिक औषध है–गुरूकृपा ।

१४०. यदि कोई मनुष्य गुरू के साथ अखण्ड और अविच्छिन्न सम्बन्ध बाँध ले तो जितनी सरलता से एक घट में से दूसरे घट में पानी बहता है उतनी ही सरलता से गुरूकृपा बहने लगती है।

१४१. केवल यंत्रवत् दण्डवत् प्रणाम करने से गुरूकृपा प्राप्त नहीं की जा सकती। वह तो गुरू के उपदेश को जीवन में उतारने से ही प्राप्त हो सकती है।

१४२. रात्रि को निद्राधीन होने से पहले अन्तर्मुख होकर शिष्य को निरीक्षण करना चाहिए कि गुरू की आज्ञा का पालन कितनी मात्रा में किया है।

१४३. हररोज गुरू की सेवा का प्रारंभ करने से पहले शिष्य को मन में निश्चय करना चाहिए कि पूर्व की अपेक्षा अब अधिक भक्तिभाव से एवं अधिक आज्ञाकारिता से गुरू की सेवा करूँगा।

१४४. गुरू में तथा शास्त्रों में थोड़ी बहुत श्रद्धा होती है वह भी कुसंग से शीघ्र नष्ट हो जाती है।

नैतिक पूर्णता की आवश्यकता

१४५. जो गुरू के पवित्र चरणों के प्रति सच्चा भक्तिभाव विकसित करना चाहते हों उन्हें सब प्रकार की खराब आदतों का त्याग कर देना चाहिए। जैसे कि धूम्रपान करना, पान खाना, नास सूँघना, मद्यपान करना, जुआ खेलना, सिनेमा देखना, अखबार–नोवेल पढ़ना, फेशन करना, माँस खाना, चोरी करना, दिन में सोना, गाली बोलना, निन्दा–आलोचना करना आदि।

१४६. जो गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना चाहते हैं उन्हें सब दिव्य गुणों का विकास करना चाहिए। जैसे कि सत्य बोलना, न्यायपरायणता, अहिंसा, इच्छाशक्ति, सहिष्णुता, सहानुभूति, स्वाश्रय, आत्मश्रद्धा, आत्मसंयम, त्याग, आत्मनिरीक्षण, तत्परता, सहनशक्ति, समता, निश्चय, विवेक, वैराग्य, संन्यास, हिम्मत, आनन्दी स्वभाव, हरएक वस्तु में मर्यादा रखना आदि।

१४७. आनन्द के लिए बाहर क्यों व्यर्थ खोज करते हो? सदगुरू के चरणों के समीप जाओ और शाश्वत सुख का उपभोग करो।

१४८. सदगुरू के चरणों में श्रद्धा और भक्तिभाव ये दो पंख हैं जिनकी सहायता से शिष्य पूर्णता के शिखर पर पहुँचने में शक्तिमान बनता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रकरणः १० –गुरूभक्ति का संविधान

योग्य व्यवहार के नियम

१. गुरू के कार्य की अविचारी आलोचना नहीं करनी चाहिए।

२. गुरू को अविचारी सलाह नहीं देना चाहिए। हमेशा चुप रहो।

३. जाने अनजाने गुरू की भावना को ठेस मत पहुँचाओ।

४. सदगूरू के चरणकमल की धूलि अमरत्व प्रदान करने वाली है।

५. गुरू के पावनकारी चरणों की पवित्र धूलि शिष्य के लिए सचमुच वरदान स्वरूप है।
६. आचार्य के पवित्र चरणों की धूलि ललाट पर लगाना सबसे महान भाग्य की बात है।
७. जीवन का सबसे महान और दुर्लभ सौभाग्य गुरू के चरणकमल का स्पर्श है।
८. गुरूकृपा और स्त्री का मुख (काम) वे दोनों परस्पर विरूद्ध चीजें हैं। अगर आपको एक की आवश्यकता हो तो दूसरी का त्याग करो।
९. गुरू के पावन चरणों की पवित्र धूलि शिष्य को रिद्धि–सिद्धि दिलाती है।
१०. सदगुरू के जीवनदायी चरणों की धूलि पूजने योग्य है।
११. शिष्य की सबसे महान संपत्ति अपने सदगुरू के चरणकमल की पवित्र धूलि है।
१२. जो व्यक्ति अपने गुरू के चरणकमल की पवित्र धूलि को अपने ललाट पर लगाता है उसका हृदय शीघ्र पवित्र बनता है।
१३. गुरू के चरणकमल की धूलि की महिमा अवर्णनीय है।
१४. इस पृथ्वी पर हमारा जीवन अन्तःकरणपूर्वक सदगुरू के प्रति दिनोंदिन वर्धमान भक्तिभाव से, अधिक–से–अधिक उनकी सेवा करने के लिए, उनकी आज्ञा में रहने के लिए एक उत्तम मौका है।
१५. गुरूभक्तियोग की नींव गुरू के प्रति अखण्ड श्रद्धा में निहित है।
१६. शिष्य को समझ में आता है कि हिमालय की एकान्त गुफा में समाधि लगाने की अपेक्षा गुरू की निजी सेवा करने से वह उनके ज्यादा संयोग में आ सकता है, गुरू के साथ अधिक एकता स्थापित कर सकता है।
१७. गुरू को सम्पूर्ण, बिनशरती आत्म–समर्पण करने से अचूक गुरूभक्ति प्राप्त होती है।

जीवन के जंजाल से परे

१८. जब आप मुश्किलों एवं मुसीबतों में आ जायें तब गुरू की कृपा के लिए प्रार्थना करें। अपने सच्चे हृदय से बार–बार प्रार्थना करें। सब सरल बन जाएगा, ठीक हो जायेगा।
१९. प्रातःकाल में जगने के तुरन्त बाद और रात्रि के समय सोने से पहले गुरू का चिन्तन करो। पूर्णतः उनकी शरण में जाओ।
२०. दिन के दौरान अगर गुरू की सेवा के बारे में आज्ञापालन में निष्ठा का अभाव या ऐसी कोई भूल हुई हो तो रात्रि में सोने से पहले, उसका विचार करो।
२१. अपनी आवश्यकताएँ कम करो। पैसे बचाओ और गुरू के चरणकमलों में अर्पण करो। इसमें आपकी गुरूभक्ति की कसौटी है।
२२. ब्रह्मनिष्ठ गुरू के चरणकमलों के सान्निध्य में जाने के लिए कला, विज्ञान या विद्वता कुछ भी आवश्यक नहीं है। आवश्यक है केवल उनके प्रति प्रेम और भक्ति से पूर्ण हृदय, जो फल की अपेक्षा से रहित, केवल उनमें ही निरत रहने के संकल्पवाला होना चाहिए। केवल उनके ही कार्य में लगा हुआ केवल उनके ही प्रेम में मग्न रहने वाला हो।
२३. मानसिक शान्ति और आनन्द गुरू को किये हुए आत्मसमर्पण का फल है।
२४. गुरू के प्रति सच्चे भक्तिभाव की कसौटी आन्तरिक शान्ति और उनके आदेशों का पालन करने की तत्परता में निहित है।
२५. गुरूसेवा के द्वारा ज्ञान में वृद्धि करो और मुक्ति पाओ।

२६. गुरूकृपा से जिनको विवेक और वैराग्य प्राप्त हुए हैं उनको धन्यवाद है ! वे सर्वोत्तम शान्ति और सनातन सुख का भोग करेंगे।
२७. शिष्य गुरू को जब तक योग्य गुरूदक्षिणा नहीं देगा तब तक गुरू के दिये हुए ज्ञान का फल मिलेगा नहीं।
२८. गुरूभक्तियोग मन का संयम और गुरू की सेवा द्वारा उसमें होने वाला परिवर्तन है।

शिष्यों के प्रकार

२९. उत्तम शिष्य पैट्रोल जैसा है। काफी दूर होते हुए भी गुरू उपदेश की चिंगारी को तुरंत पकड़ लेता है।
३०. दूसरी कक्षा का शिष्य कपूर जैसा है। गुरू के स्पर्श से उसकी अन्तरात्मा जाग्रत होती है और वह उसमें आध्यात्मिकता की अग्नि को प्रज्वलित करता है।
३१. तीसरी कक्षा का शिष्य कोयले जैसा है। उसकी अन्तरात्मा को जाग्रत करने में गुरू को बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है।
३२. चौथी कक्षा का शिष्य केले के तने जैसा है। उसके लिए किये गये कोई भी प्रयास काम नहीं लगते। गुरू कितना भी करे फिर भी वह ठण्डा और निष्क्रिय रहता है।
३३. "हे शिष्य! सुन। तू केले के तने जैसा मत होना। तू पैट्रोल जैसा शिष्य बनने का प्रयास करना अथवा तो कम–से–कम कपूर जैसा तो अवश्य बनना"
३४. आप जब अपने गुरू के पवित्र चरणों की शरण में जाएँ तब उनसे दुनियावी आवश्यकताएँ या और कोई चीजें माँगना नहीं किन्तु उनकी कृपा ही माँगना जिसके कारण आपमें उनके प्रति सच्चा भक्तिभाव और स्थायी श्रद्धा जगे।
३५. गुरू ही मार्ग हैं, जीवन हैं और आखिरी ध्येय हैं। गुरूकृपा के बिना किसी को भी सर्वोत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सकता।
३६. गुरू ही मोक्षद्वार हैं। गुरू ही मूर्तिमन्त कृपा हैं।
३७. जीने के लिए मरो। अपने गुरू के चरणकमलों में मरो। अहंभाव का त्याग करके मरो जिससे पुनः सच्चा दिव्य जीवन जी सको। जिस जीवन में गुरूकृपा के प्राणों की धड़कन नहीं है, जो जीवन गुरूकृपा से दिव्य स्वरूप को प्राप्त नहीं हुआ है वह सच्चा जीवन नहीं है।
३८. गुरू और शिष्य के बीच जो वास्तविक सम्बन्ध है उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह लिखा नहीं जा सकता, वह समझाया नहीं जा सकता। सत्य के सच्चे खोजी को करूणास्वरूप ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास श्रद्धा और भक्तिभाव से आना चाहिए। उनके साथ चिरकाल तक रहकर सेवा करना चाहिए।
३९. गुरूभक्तियोग एक स्वतंत्र योग है।
४०. शिष्य की कसौटी करने के लिए गुरू जब विघ्न डालें तब धैर्य रखना चाहिए।
४१. गुरू सेवा के कार्य में आत्मभोग देना यह गुरू के पवित्र चरणों के प्रति भक्तिभाव विकसित करने का उत्तम साधन है।
४२. प्रार्थना, जप, कीर्तन, समाधि, गुरूसेवा, ऊँचे भव्य विचार और समझ से मन की शान्ति उत्पन्न होती है।

गुरू के आश्रय में...

४३. गुरू की सेवा के दौरान शिष्य को बहुत ही नियमित रहना चाहिए।
४४. गुरू के दिव्य कार्य हेतु शिष्य को मन, वचन और कर्म में बहुत ही पवित्र रहना चाहिए।
४५. अपने हृदय रूपी उद्यान में निष्ठा, सादगी, शान्ति, सहानुभूति, आत्मसंयम और आत्मत्याग जैसे पुष्प सुविकसित करो और वे पुष्प अपने गुरू को अर्घ्य के रूप में अर्पण करो।
४६. शिष्य को गुरू की संपत्ति पर निगाह रखनी चाहिए। रक्षक की तरह उस पर सतत दृष्टि रखनी चाहिए।
४७. ब्रह्मनिष्ठ गुरू की कृपा से प्राप्त न हो सके, ऐसा तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है।
४८. गुरूभक्तियोग का अभ्यास किये बिना साधक के लिए ईश्वर–साक्षात्कार की ओर ले जाने वाले आध्यात्मिक मार्ग में प्रविष्ट होना संभव नहीं है।
४९. गुरूभक्तियोग दिव्य सुख के द्वार खोलने के लिए गुरूचाबी है।
५०. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से सर्वोच्च शान्ति के राजमार्ग का प्रारंभ होता है।
५१. सदगुरू के पवित्र चरणों में आत्मसमर्पण करना ही गुरूभक्तियोग की नींव है।
५२. अगर आपको सदगुरू के जीवनदायक चरणों में दृढ़ श्रद्धा एवं भक्तिभाव होगा तो आपको गुरूभक्तियोग के अभ्यास में अवश्य सफलता मिलेगी।
५३. केवल मनुष्य का पुरूषार्थ ही योगाभ्यास के लिए पर्याप्त नहीं है लेकिन गुरूकृपा अनिवार्यतः आवश्यक है।
५४. बाघ, सिंह या हाथी जैसे जंगली प्राणियों को पालना बहुत ही आसान है, पानी या आग पर चलना बहुत आसान है लेकिन मनुष्य में अगर गुरूभक्तियोग के अभ्यास के लिए तमन्ना न हो तो गुरू के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करना बहुत कठिन है।
५५. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से शिष्य को सर्वोत्तम शान्ति, आनन्द और अमरता प्राप्त होती है।
५६. जीवन का ध्येय गुरूभक्तियोग का अभ्यास करके सदगुरू की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करना है।
५७. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से जन्म–मृत्यु के चक्कर से मुक्ति मिलती है।
५८. गुरूभक्तियोग अमरता, सनातन सुख, मुक्ति, पूर्णता, अखूट आनन्द एवं चिरंतन शान्ति देता है।
५९. संसार या सांसारिक प्रक्रिया के मूल में मन है। बन्धन और मुक्ति, सुख और दुःख का कारण मन है। इस मन को गुरूभक्तियोग के अभ्यास से ही नियंत्रित किया जा सकता है।
६०. सदगुरू के दिव्य कार्य के वास्ते आत्मसमर्पण करना अथवा तन, मन, धन अर्पण करना चाहिए। सदगुरू की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए उनके पवित्र चरणों का ध्यान करना चाहिए। गुरू के पवित्र उपदेश को सुनकर निष्ठापूर्वक उसके मुताबिक चलना चाहिए।
६१. उल्लू सूर्यप्रकाश के अस्तित्व में माने या न माने फिर भी सूर्य तो सदा प्रकाशित रहता है। उसी प्रकार अज्ञानी और चंचल मनवाला शिष्य माने या न माने फिर भी गुरू की कल्याणकारी कृपा तो चमत्कारी परिणाम देती है।
६२. अपने गुरू को ईश्वर मानकर उनमें विश्वास रखो, उनका आश्रय लो, ज्ञान की दीक्षा लो।
६३. केवल शुद्ध भक्ति से ही गुरू प्रसन्न होते हैं। गुरूभक्तियोग के अभ्यास के मन की शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती है।
६४. जिसने सदगुरू के पवित्र चरणों में आश्रय लिया है ऐसे शिष्य के पास से मृत्यु पलायन हो जाती है।

६५. गुरूभक्तियोग का अभ्यास सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य और अनासक्ति पैदा करता है और अमरता प्रदान करता है।
६६. सदगुरू के जीवनप्रदायक चरणों की भक्ति महापापी का भी उद्धार कर देती है।
६७. जिसने सदगुरू के पवित्र चरणों में आश्रय लिया है ऐसे पवित्र हृदयवाले शिष्य के लिए कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं है।
६८. साधुत्व और संन्यास से, अन्य योगों से एवं दान से, मंगल कार्य करने आदि से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सब गुरूभक्तियोग के अभ्यास से शीघ्र प्राप्त होता है।
६९. गुरूभक्तियोग शुद्ध विज्ञान है। वह निम्न प्रकृति को वश में लाने की एवं परम आनन्द प्राप्त करने की रीति सिखाता है।
७०. गुरूदेव की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए आपके अन्तःकरण की गहराई से उनको प्रार्थना करो। ऐसी प्रार्थना चमत्कार कर सकती है।
७१. जिस शिष्य को गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना है उसके लिए कुसंग एक महान शत्रु है।
७२. जो नैतिक पूर्णता, गुरू की भक्ति आदि के बिना ही गुरूभक्तियोग का अभ्यास करता है उसे गुरूकृपा नहीं मिल सकती।

गुरूभक्ति के लाभ

७३. गुरू में अविचल श्रद्धा शिष्य को कैसी भी मुसीबत से पार होने की गूढ़ शक्ति देती है।
७४. गुरू में दृढ़ श्रद्धा साधक को अनन्त ईश्वर के साथ एकरूप बनाती है।
७५. जिस शिष्य को गुरू में श्रद्धा है वह दलील नहीं करता, विचार नहीं करता, तर्क नहीं करता। वह तो केवल आज्ञा ही मानता है।
७६. शिष्य जब गुरू में श्रद्धा खो देता है तब उसका जीवन उजाड़ मरूभूमि जैसा बन जाता है। **साधक जब गुरू में श्रद्धा खो बैठता है तब उसके जीवन का वैभव नष्ट हो जाता है।**
७७. जीवन का पानी गुरू में दृढ़ श्रद्धा है।
७८. सदैव याद रखोः 'मनुष्य जब पवित्र गुरू के शब्दों में श्रद्धा खो देता है तब वह सब कुछ खो बैठता है। अतः गुरू में पूर्ण श्रद्धा रखो।'
७९. गुरू के चरणकमलों की प्रार्थना शिष्य के हृदय को प्रफुल्ल बनाती है। उसके मन को शक्ति, शान्ति एवं शुद्धि से भर देती है।
८०. गुरूदेव के पावन चरणों का भावपूर्वक प्रक्षालन करके उस चरणोदक को अपने सिर पर छिड़को। यह महान शुद्धि करने वाला है।
८१. दिव्य गुरू के पवित्र चरणों की धूलि बनना यह जीवन का अमूल्य लाभ है।
८२. आध्यात्मिक गुरू के पवित्र चरणों की प्रार्थना सुबह की चाबी और शाम का ताला है। अर्थात सुबह होने से पहले एवं शाम होने के बाद प्रार्थना करना चाहिए।
८३. सदगुरू के चरणों के प्रति श्रद्धा एवं भक्तिभावरहित जीवन मरूभूमि में खड़े हुए रसहीन वृक्ष जैसा है।
८४. गुरू के पवित्र चरणों की प्रार्थना शिष्य के हृदय की गहराई में से निकलनी चाहिए।
८५. शिष्य के शुद्ध, निखालिस हृदय से निकली हुई आर्जवपूर्ण प्रार्थना ब्रह्मनिष्ठ गुरू तुरन्त सुनते हैं।
८६. दुःख से मुक्ति पाने के लिए नहीं अपितु दुःख सहन करने की शक्ति एवं तितिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करो।

८७. सब दोषों से पार होने की शक्ति के लिए सदगुरू के चरणकमलों की प्रार्थना करो।
८८. हरेक अपने ढंग से गुरू की सेवा करना चाहता है लेकिन गुरू चाहें उस प्रकार गुरू की सेवा करना कोई नहीं चाहता।
८९. शिष्य अपने गुरू की सेवा करना तो चाहता है पर किसी प्रकार का कष्ट सहना नहीं चाहता।

सच्चे सुख का मूल

९०. सच्चा सुख सदगुरू की सेवा में निहित है।
९१. शिष्य गुरूसेवा के द्वारा ही देहाध्यास से छूटकर ऊँची कक्षा प्राप्त कर सकता है।
९२. अपने गुरू में, गुरू की महिमा में और गुरू के नामजप के प्रभाव में सच्ची, पूर्ण, जीवन्त और अविचल श्रद्धा रखो।
९३. गुरू की सम्पूर्णतः शरणागति लेना गुरूभक्ति की अनिवार्य शर्त है।
९४. जब तक आपको गुरू में अखण्ड श्रद्धा न जगे तब तक गुरू की कृपा आप उतरेगी ऐसी आशा मत करना।
९५. जो गुरू मुक्तात्मा है उनके कार्य अश्रद्धा से या सन्देह से नहीं देखना चाहिए।
९६. ईश्वर, मनुष्य एवं ब्रह्माण्ड के विषय में सच्चा ज्ञान गुरू से लिया जाता है।
९७. गुरू साधना रूपी नाव के कर्णधार हैं लेकिन पतवार तो साधक को ही चलानी होगी।
९८. गुरूभक्ति तमाम आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का मूल है।
९९. गुरू के प्रति भक्तिभाव ईश्वरप्राप्ति का सरल एवं आनन्ददायक मार्ग है।
१००. गुरू भक्ति धर्म का सार है।
१०१. गुरू के चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव जीवन को सचमुच सार्थक बनाता है।
१०२. गुरूभक्ति का आदि, मध्य और अन्त मधुर एवं सुखदायक है।
१०३. गुरूप्रेम एवं संसारप्रेम दोनों एक साथ नहीं रह सकते।
१०४. गुरू एवं लक्ष्मी की एक साथ सेवा नहीं हो सकती।
१०५. गुरूद्रोह ईश्वरद्रोह के बराबर है।

भक्ति का अर्थ

१०६. गुरू पर भक्तिभाव होना आध्यात्मिक निर्माण– कार्य की नींव है।
१०७. भावना की उफान या उत्तेजना गुरूभक्ति नहीं कहलाती।
१०८. शरीरप्रेम यानी गुरू प्रेम का इन्कार। शिष्य अगर अपने शरीर की अधिक देखभाल करता है तो वह गुरू की सेवा नहीं कर पाता।
१०९. साधक के दुष्ट स्वभाव का एकमात्र उपाय गुरूसेवा है।
११०. गुरू बिल्कुल हिचकिचाहट से रहित, निःशेष एवं सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के सिवाय और कुछ नहीं चाहते। जैसे प्रायः आजकल के शिष्य करते हैं वैसे आत्मसमर्पण केवल शब्दों की बात ही नहीं होना चाहिए।
१११. गुरू को जितनी अधिक मात्रा में आत्मसमर्पण करोगे उतनी अधिक गुरूकृपा प्राप्त करोगे।
११२. कितनी मात्रा में गुरूकृपा उतरेगी इसका आधार कितनी मात्रा में आत्मसमर्पण हुआ है इस पर निर्भर करता है।
११३. शिष्य का कर्त्तव्य गुरू के प्रति प्रेम रखने का एवं गुरू की सेवा करने का है।

११४. गुरू की कृपा गुरूभक्तियोग का आखिरी लक्ष्य है।
११५. गुरूभक्तियोग का अभ्यास जीवन के परम लक्ष्य के साक्षात्कार का सचोट मार्ग प्रस्तुत करता है।
११६. जहाँ गुरूकृपा है वहाँ योग्य व्यवहार है और जहाँ योग्य व्यवहार है वहाँ रिद्धि–सिद्धि और अमरता है।
११७. मायारूपी नागिन के द्वारा डसे हुए लोगों के लिए गुरू का नाम एक शक्तिशाली रामबाण औषधि है।
११८. पवित्रता, भक्तिभाव, प्रकाश एवं ज्ञान के लिए गुरू की प्रार्थना करो।
११९. गुरूसेवा की भावना आपकी रग–रग में, नस–नस में, प्रत्येक हड्डी में एवं शरीर के तमाम कोषों में गहरी उतर जानी चाहिए। गुरू सेवा की भावना को उग्र बनाओ। उसका बदला अमूल्य है।
१२०. गुरूभक्तियोग ही सर्वत्तम योग है।
१२१. कुछ शिष्य गुरू के महान शिष्य होने का आडम्बर करते हैं लेकिन उनको गुरूवचन में या कार्य में विश्वास और श्रद्धा नहीं होती।
१२२. जो अद्वितीय हैं ऐसे सर्वशक्तिमान गुरू की सम्पूर्ण शरण में जाओ।
१२३. गुरूभक्तियोग आपको इसी जन्म में धीरे–धीरे दृढ़तापूर्वक, निश्चिंततापूर्वक एवं अविचलतापूर्वक ईश्वर के प्रति ले जाता है।
१२४. अहंभाव के विनाश से गुरूभक्तियोग का प्रारंभ होता है और शाश्वत सुख की प्राप्ति में परिणत होता है।
१२५. गुरूभक्तियोग जीवन के तमाम दुःख–दर्दों को निर्मूल करने का मार्ग बताता है।
१२६. गुरूभक्तियोग का अभ्यास आपको भय, अज्ञान, निराशावादी स्वभाव, मानसिक अशान्ति, रोग, निराशा, चिन्ता आदि से मुक्त होने में सहायभूत होता है।
१२७. गुरूभक्तियोग जीवन के अनिष्टों का एक ही उपाय है।
१२८. गुरूभक्तियोग के अभ्यास से सर्वसुखमय, अविनाशी आत्मा को भीतर ही खोजो।
१२९. एक अन्धा दूसरे अन्धे का मार्गदर्शन नहीं कर सकता। एक कैदी दूसरे कैदी को नहीं छुड़ा सकता। इसी प्रकार जो खुद दुनियादारी के कीचड़ में फँसा हुआ हो वह दूसरों को मुक्ति नहीं करा सकता। इसीलिए गुरूभक्तियोग के अभ्यास के लिए गुरू की अनिवार्य आवश्यकता है।
१३०. गुरूभक्तियोग को जीवन का एकमात्र हेतु, ध्येय एवं वास्तविक रस का विषय बनाओ। आप सर्वोच्च सुख प्राप्त करोगे।
१३१. गुरू के प्रति भक्तिभाव के बिना आध्यात्मिकता नहीं आ सकती।
१३२. यदि आपको गुरूभक्तियोग का अभ्यास करना हो तो कामवासनावाला जीवन जीना छोड़ दो।
१३३. अगर आपको सचमुच ईश्वरप्राप्ति की कामना हो तो दुनियावी भोगविलासों से विमुख बनो और गुरूभक्तियोग का आश्रय लो।
१३४. गुरूकृपा से शिष्य के हृदय में विवेक वैराग्य का उदय होता है।
१३५. ध्यान के समय शिष्य को सदगुरू से प्रार्थना करना चाहिए कि उनके चरणकमलों की भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और वह अविचल श्रद्धा प्रदान करे।
१३६. जो गुरू के नाम का जप करता है उसको केवल मोक्ष ही नहीं लेकिन सांसारिक समृद्धि, आरोग्यता, दीर्घायु एवं दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।
१३७. शिष्य को अपने गुरूदेव का जन्मदिन बड़ी भव्यता से मनाना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गुरू और दीक्षा

योग का अभ्यास गुरू के सान्निध्य में करना चाहिए। विशेषतः तंत्रयोग के बारे में यह बात अत्यंत आवश्यक है। साधक कौन सी कक्षा का है यह निश्चित करना एवं उसके लिए योग्य साधना पसन्द करना गुरू का कार्य है।

आजकल साधकों में एक ऐसा खतरनाक एवं गलत ख्याल प्रवर्तमान है कि 'वे साधना के प्रारंभ में ही उच्च प्रकार का योग साधने के लिए काफी योग्यता रखते हैं।' प्रायः सब साधकों का जल्दी पतन होता है इसका यही कारण है। इसी से सिद्ध होता है कि अभी वह योगसाधना के लिए तैयार नहीं है। सचमुच में योग्यतावाला शिष्य नम्रतापूर्वक गुरू के पास आता है, गुरू को आत्मसमर्पण करता है, गुरू की सेवा करता है और गुरू के सान्निध्य में योग सीखता है।

गुरू और कोई नहीं है अपितु साधक की उन्नति के लिए विश्व में अवतरित परात्पर जगज्जननी दिव्य माता स्वयं ही हैं। गुरू को देव मानों, तभी आपको वास्तविक लाभ होगा। गुरू की अथक सेवा करो। वे स्वयं ही आपर पर दीक्षा के सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद बरसायेंगे।

गुरू मंत्र प्रदान करते हैं, यह दीक्षा कहलाती है। दीक्षा के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है, पापों का विनाश होता है। जिस प्रकार एक ज्योति से दूसरी ज्योति प्रज्जवलित होती है उसी प्रकार गुरू मंत्र के रूप में अपनी दिव्य शक्ति शिष्य में संक्रमित करते हैं। शिष्य उपवास करता है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है और गुरू से मंत्र ग्रहण करता है।

दीक्षा से रहस्य का पर्दा हट जाता है और शिष्य वेदशास्त्रों के गूढ़ रहस्य समझने में शक्तिमान बन जाता है। सामान्यतः ये रहस्य गूढ़ भाषा में छुपे हुए होते हैं। खुद ही अभ्यास करने से वे रहस्य प्रकट नहीं होते। खुद ही अभ्यास करने से तो मनुष्य अधिक अज्ञान के गर्क होता है। केवल गुरू ही आपको शास्त्राभ्यास के लिये योग्य दृष्टि दीक्षा के द्वारा प्रदान करते हैं। गुरू अपनी आत्म-साक्षात्कार की ज्योति का प्रकाश उन शास्त्रों के सत्य पर डालेंगे और वे सत्य आपको शीघ्र ही समझ में आ जाएँगे।

जप के लिए मंत्र

ॐ गुरूभ्यो नमः।
ॐ श्री सदगुरू परमात्मने नमः।
ॐ श्री गुरवे नमः।
ॐ श्री सच्चिदानन्द गुरवे नमः।
ॐ श्री गुरु शरणं मम।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मंत्रदीक्षा के लिए नियम

गुरू में सम्पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास रखना चाहिए तथा शिष्य को पूर्णरूपेण उनके प्रति आत्मसमर्पण करना चाहिए।

दीक्षाकाल में गुरू के द्वारा दिये गये तमाम निर्देशों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए। यदि गुरू ने विशेष नियमों की चर्चा न की हो तो निम्नलिखित सर्व सामान्य नियमों का पालन करना चाहिए।

मंत्रजप से कलियुग में ईश्वर–साक्षात्कार सिद्ध होता है, इस बात पर विश्वास रखना चाहिए।

मंत्रदीक्षा की क्रिया एक अत्यन्त पवित्र क्रिया है, उसे मनोरंजन का साधन नहीं मानना चाहिए। अन्य की देखादेखी दीक्षा ग्रहण करना उचित नहीं। अपने मन को स्थिर और सुदृढ़ करने के पश्चात गुरू की शरण में जाना चाहिए।

मंत्र को ही भगवान समझना चाहिए तथा गुरू में ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए।

मंत्रदीक्षा को सांसारिक सुख–प्राप्ति का माध्यम नहीं बनाना चाहिए, भगवत्प्राप्ति का माध्यम बनाना चाहिए।

मंत्रदीक्षा के अनन्तर मंत्रजप को छोड़ देना घोर अपराध है, इससे मंत्र का घोर अपमान होता तथा साधक को हानि होने की संभावना भी रहती है।

साधक को आसुरी प्रवृत्तियाँ ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि का त्याग करके दैवी सम्पत्ति सेवा, त्याग, दान, प्रेम, क्षमा, विनम्रता आदि गुणों को धारण करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

गृहस्थ को व्यवहार की दृष्टि से अपना कर्त्तव्य आवश्यक मानकर पूरा करना चाहिए, परन्तु उसे गौण कार्य समझना चाहिए। समग्र परिवार के जीवन को आध्यात्मिक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। मन, वचन तथा कर्म से सत्य, अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

प्रति सप्ताह मंत्रदीक्षा ग्रहण किये गये दिन एक वक्त फलाहार पर रहना चाहिए और वर्ष के अंत में उस दिन उपवास रखना चाहिए।

भगवान को निराकार–निर्गुण और साकार–सगुण दोनों स्वरूपों में देखना चाहिए। ईश्वर को अनेक रूपों में जानकर श्रीराम, श्रीकृष्ण, शंकरजी, गणेशजी, विष्णु भगवान, दुर्गा, लक्ष्मी इत्यादि किसी भी देवी–देवता में विभेद नहीं करना चाहिए। सभी के इष्टदेव सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सभी देवता के प्रति विरोधभाव प्रकट नहीं करना चाहिए। हाँ, आप अपने इष्टदेव पर अधिक विश्वास रख सकेत हो, उसे अधिक प्रेम कर सकते हो परन्तु उसका प्रभाव दूसरे के इष्ट पर नहीं पड़ना चाहिए। भगवद् गीता में कहा भी हैः

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

'जो पुरूष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिय अदृश्य नहीं होता' (६, ३०)

इस प्रकार गोस्वामी जी ने भी लिखा है किः

सिया राम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

अपना इष्ट मंत्र गुप्त रखना चाहिए।

पति पत्नी यदि एक ही गुरू की दीक्षा लें तो यह अति उत्तम है, परन्तु अनिवार्य नहीं है।

लिखित मंत्रजप करना चाहिए तथा उसे किसी पवित्र स्थान में सुरक्षित रखना चाहिए। इससे वातावरण शुद्ध रहता है।

मंत्रजप के लिए पूजा का एक कमरा अथवा कोई स्थान अलग रखना संभव हो तो उत्तम है। उस स्थान को अपवित्र नहीं होने देना चाहिए।

प्रत्येक समय अपने गुरू तथा इष्टदेव की उपस्थिति का अनुभव करते रहना चाहिए.

प्रत्येक दीक्षित दम्पति को एक पत्नीव्रत तथा पतिव्रता धर्म का पालन करना चाहिए।

अपने घर के मालिक के रूप में गुरू तथा इष्टदेव को मानकर स्वयं अपने को उनके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना चाहिए।

मंत्र की शक्ति पर विश्वास रखना चाहिए। उससे सारे विघ्नों का निवारण हो जाता है।

प्रतिदिन कम से कम ११ माला का जप करना चाहिए। प्रातः और सन्ध्याकाल को नियमानुसार जप करना चाहिए।

माला फिराते समय तर्जनी, अंगूठे के पास की तथा कनिष्ठिका (छोटी) उंगली का उपयोग नहीं करना चाहिए। माला नाभि के नीचे जाकर लटकती हुई नहीं रखनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो किसी वस्त्र (गौमुखी) में रखकर माला फिराना चाहिए। सुमेरू के मनके को (मुख्य मनके को) पार करके माला नहीं फेरना चाहिए। माला फेरते समय सुमेरू तक पहुँचकर पुनः माला घुमाकर ही दूसरी माला का प्रारम्भ करना चाहिए।

अन्त में तो ऐसी स्थिति आ जानी चाहिए कि निरन्तर उठते बैठते, खाते-पीते, चलते, काम करते तथा सोते समय भी जप चलते रहना चाहिए।

आप सभी को गुरू देव का अनुग्रह प्राप्त हो, यह हार्दिक कामना है। आप सभी मंत्रजप के द्वारा अपना ऐच्छिक लक्ष्य प्राप्त करने में सम्पूर्णतः सफल हों, ईश्वर आपको शान्ति, आनन्द, समृद्धि तथा आध्यात्मिक प्रगति प्रदान करें ! आप सदा उन्नति करते रहें और इसी जीवन में भगवत्साक्षात्कार करें। हरि ॐ तत्सत्।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जप के नियम

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक गुरू द्वारा प्राप्त मंत्र की अथवा किसी भी मंत्र की अथवा परमात्मा के किसी भी एक नाम की १ से २०० माला जप करो।

रूद्राक्ष अथवा तुलसी की माला का उपयोग करो।

माला फिराने के लिए दाएँ हाथ के अँगूठे और बिचली (मध्यमा) या अनामिका उँगली का ही उपयोग करो।

माला नाभि के नीचे नहीं लटकनी चाहिए। मालायुक्त दायाँ हाथ हृदय के पास अथवा नाक के पास रखो।

माला ढंके रखो, जिससे वह तुम्हें या अन्य के देखने में न आये। गौमुखी अथवा स्वच्छ वस्त्र का उपयोग करो।

एक माला का जप पूरा हो, फिर माला को घुमा दो। सुमेरू के मनके को लांघना नहीं चाहिए।

जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक मानसिक जप करो। यदि मन चंचल हो जाय तो जप जितने जल्दी हो सके, प्रारम्भ कर दो।

प्रातः काल जप के लिए बैठने के पूर्व या तो स्नान कर लो अथवा हाथ पैर मुँह धो डालो। मध्यान्ह अथवा सन्ध्या काल में यह कार्य जरूरी नहीं, परन्तु संभव हो तो हाथ पैर अवश्य धो लेना चाहिए। जब कभी समय मिले जप करते रहो। मुख्यतः प्रातःकाल, मध्यान्ह तथा सन्ध्याकाल और रात्रि में सोने के पहले जप अवश्य करना चाहिए।

जप के साथ या तो अपने आराध्य देव का ध्यान करो अथवा तो प्राणायाम करो। अपने आराध्यदेव का चित्र अथवा प्रतिमा अपने सम्मुख रखो।

जब तुम जप कर रहे हो, उस समय मंत्र के अर्थ पर विचार करते रहो।

मंत्र के प्रत्येक अक्षर का बराबर सच्चे रूप में उच्चारण करो।

मंत्रजप न तो बहुत जल्दी और न तो बहुत धीरे करो। जब तुम्हारा मन चंचल बन जाय तब अपने जप की गति बढ़ा दो।

जप के समय मौन धारण करो और उस समय अपने सांसारिक कार्यों के साथ सम्बन्ध न रखो।

पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुँह रखो। जब तक हो सके तब तक प्रतिदिन एक ही स्थान पर एक ही समय जप के लिए आसनस्थ होकर बैठो। मंदिर, नदी का किनारा अथवा बरगद, पीपल के वृक्ष के नीचे की जगह जप करने के लिए योग्य स्थान है।

भगवान के पास किसी सांसारिक वस्तु की याचना न करो।

जब तुम जप कर रहे हो उस समय ऐसा अनुभव करो कि भगवान की करूणा से तुम्हारा हृदय निर्मल होता जा रहा है और चित्त सुदृढ़ बन रहा है।

अपने गुरूमंत्र को सबके सामने प्रकट न करो।

जप के समय एक ही आसन पर हिले–डुले बिना ही स्थिर बैठने का अभ्यास करो।

जप का नियमित हिसाब रखो। उसकी संख्या को क्रमशः धीरे–धीरे बढ़ाने का प्रयत्न करो।

मानसिक जप को सदा जारी रखने का प्रयत्न करो। जब तुम अपना कार्य कर रहे हो, उस समय भी मन से जप करते रहो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मनुष्य के चार विभाग

साधारण संसारी मनुष्य दूध जैसा है। वह जबदुष्ट जनों के सम्पर्क में आता है तब उल्टे मार्ग में चला जाता है और फिर कभी वापस नहीं लौटता। उसी दूध में अगर थोड़ी सी छाछ डाली जाती है तो वह दूध दही बन जाता है। संसारी मनुष्य को गुरू दीक्षा देते हैं। अतः जो स्वयं सिद्ध हैं ऐसे गुरू दही जैसे हैं।

छाछ डालने के बाद दूध को कुछ समय तक रख दिया जाता है। इसी प्रकार दीक्षित शिष्य को एकान्त का आश्रय लेकर दीक्षा का मर्म समझना चाहिए। तभी दूध का दही बनेगा, अर्थात् शिष्य का परिवर्तन होगा और वह ज्ञानी बनेगा।

अब दही सरलता से पानी के साथ मिलजुल नहीं जायेगा। अगर दही में पानी डाला जायेगा तो वह तले में बैठ जाएगा। अगर दही को जोर से बिलोया जाएगा तो ही वह पानी के साथ मिश्रित होगा। इसी प्रकार विवेवकवाला मनुष्य जब बुरी संगत में आता है तब दुराचारी लोगों के साथ सरलता के मिलता जुलता नहीं है। लेकिन संगत अत्यंत प्रगाढ़ होगी तो वह भी उल्टे मार्ग में जाएगा। जब दही को सूर्योदय से पहले ब्राह्ममुहूर्त में अच्छी तरह बिलोया जाएगा तब उसमें से मक्खन मिलेगा। इसी प्रकार विवेकी साधक ब्राह्ममुहूर्त में ईश्वर का गहन चिन्तन करता है तो उसे आत्मज्ञान रूपी नवनीत प्राप्त होता है। फिर वह आत्म-साक्षात्कारी साधुरूप बन जाता है।

इस मक्खन (नवनीत) को अब पानी में डाल सकते हैं। वह पानी में मिश्रित नहीं होगा, पानी में डूबेगा नहीं अपितु तैरता रहेगा। आत्म-साक्षात्कार सिद्ध किये हुए साधु अगर दुर्जनों के सम्पर्क में आयेंगे तो भी उल्टे मार्ग में नहीं जाएँगे। दुनियावी बातों से अलिप्त रहकर आनन्द से संसार में तैरते रहेंगे। अगर इस नवनीत को पिघलाकर घी बनाया जाय और बाद में उसे पानी में डाला जाय तो वह सारे पानी को अपनी सुवास से सुवासित कर देगा। इस प्रकार साधु को निःस्वार्थ प्रेम की आग से पिघलाया जाय तो वह दैवी चैतना रूप घी बनकर अपने संग से सबको पावन करेगा, सबकी उन्नति करेगा। उसके सम्पर्क में आने वालों के जीवन में अपने ज्ञान, महिमा एवं दिव्यता का सिंचन करेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

'गुरूकृपा हि केवलं......'

साधक के जीवन में सदगुरू-कृपा का क्या महत्त्व है, इस विषय में पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू अपने सदगुरूदेव की अपार कृपा का स्मरण करते हुए कहते हैं-

"मैंने तीन वर्ष की आयु से लेकर बाईस वर्ष की आयु तक अनेकों साधनाएँ की, दस वर्ष की आयु में अनजाने ही रिद्धि-सिद्धियों के अनुभव हुए, भयानक वनों, पर्वतों, गुफाओं में यत्र-तत्र तपश्चर्या

करके जो प्राप्त किया वह सब, सदगुरूदेव की कृपा से जो मिला उसके आगे तुच्छ है। सदगुरूदेव ने अपने घर में ही घर बता दिया। जन्मों की साधना पूरी हो गई। उनके द्वारा प्राप्त हुए आध्यात्मिक खजाने के आगे त्रिलोकी का साम्राज्य भी तुच्छ है।"

हम न हँसकर सीखे हैं न रोकर सीखे हैं।
जो कुछ भी सीखे हैं सदगुरू के होकर सीखे हैं॥

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ